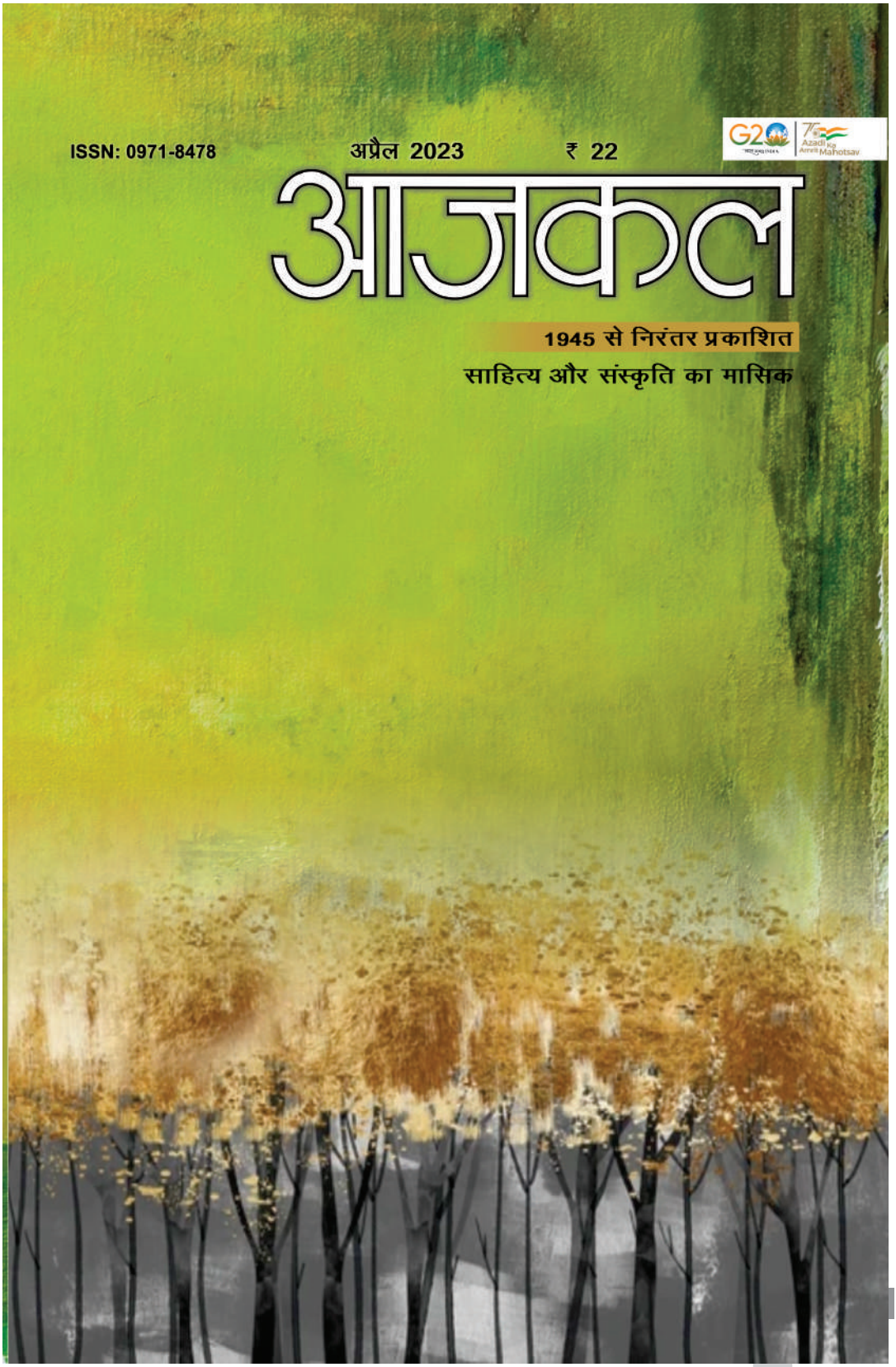
ISSN: 0971-8478 अप्रैल 2023 ₹ 22

आजकल

1945 से निरंतर प्रकाशित

साहित्य और संस्कृति का मासिक





योजना
विकास को समर्पित मासिक
(हिंदी, अँग्रेज़ी, उर्दू व 10 अन्य भारतीय भाषाओं में)

प्रकाशन विभाग
सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय
भारत सरकार

कुरुक्षेत्र
ग्रामीण विकास पर मासिक
(हिंदी और अँग्रेज़ी)

आजकल
साहित्य एवं संस्कृति का मासिक
(हिंदी तथा उर्दू)

बाल भारती
बच्चों की मासिक पत्रिका
(हिंदी)

घर पर हमारी पत्रिकाएँ मंगाना है काफी आसान...

आपको सिर्फ नीचे दिए गए 'भारत कोश' के लिंक पर जा कर पत्रिका के लिए ऑनलाइन डिजिटल भुगतान करना है-
https://bharatkosh.gov.in/Product/Product

सदस्यता दरें

प्लान	योजना या कुरुक्षेत्र या आजकल		बाल भारती	
वर्ष	साधारण डाक	ट्रैकिंग सुविधा के साथ	साधारण डाक	ट्रैकिंग सुविधा के साथ
1	₹ 230	₹ 434	₹ 160	₹ 364

ऑनलाइन के अलावा आप डाक द्वारा डिमांड ड्राफ्ट, भारतीय पोस्टल आर्डर या मनीआर्डर से भी प्लान के अनुसार निर्धारित राशि भेज सकते हैं। डिमांड ड्राफ्ट, भारतीय पोस्टल ऑडर या मनीआर्डर '**अपर महानिदेशक, प्रकाशन विभाग, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय**' के पक्ष में **नई दिल्ली** में देय होना चाहिए।

अपने डीडी, पोस्टल आर्डर या मनीआर्डर के साथ नीचे दिया गया 'सदस्यता कूपन' या उसकी फोटो कॉपी में सभी विवरण भरकर हमें भेजें। भेजने का पता है- **संपादक, पत्रिका एकांश, प्रकाशन विभाग, कक्ष सं. 779, सूचना भवन, सीजीओ कॉम्प्लेक्स, लोधी रोड, नई दिल्ली-110003**

अधिक जानकारी के लिए ईमेल करें- pdjucir@gmail.com

हमसे संपर्क करें- **फोन : 011-24367453** (सोमवार से शुक्रवार सभी कार्य दिवस पर प्रात: साढ़े नौ बजे से शाम छह बजे तक)

कृपया नोट करें कि सदस्यता शुल्क प्राप्त होने के बाद सदस्यता शुरू होने में कम से कम आठ सप्ताह लगते हैं। कृपया इतने समय प्रतीक्षा करें और पत्रिका न मिलने की शिकायत इस अवधि के बाद करें।

सदस्यता कूपन (नई सदस्यता/नवीकरण/पते में परिवर्तन)

कृपया मुझे 1 वर्ष के प्लान के तहत ..... पत्रिका ..... भाषा में भेजें।

नाम (साफ व बड़े अक्षरों में) .....

पता : .....

..... ज़िला ..... पिन .....

ईमेल ..... मोबाइल नं. .....

डीडी/पीओ/एमओ सं. ..... दिनांक ..... सदस्यता सं. .....

आजकल

स्थापित 1945

अप्रैल, 2023

चैत्र-वैशाख : 1945

वर्ष : 78 / अंक : 12 /
पृष्ठ : 100 / पूर्णांक : 932



इस अंक में

लेख

8 उत्तर-वैश्विकता — नीलिमा सिन्हा

20 'कुइयाँजान' उपन्यास में जल संवेदना — श्रुति

25 हिन्दी ग़ज़ल : विकास यात्रा — डी. एम. मिश्र

जन्मशती पर विशेष

29 सोमनाथ होर : प्रतिभा और प्रतिबद्धता के प्रतीक — रणजीत साहा

पुण्यतिथि स्मरण

35 शृंगारिक और भक्तिपरक गीत के रचयिता — पारस कुंज

कहानी

37 कजरिया — देवेन्द्र कुमार पाठक

44 अपदस्थ — राजा सिंह

56 भूस्खलन — विपिन चौधरी

कविताएँ / ग़ज़लें

61 झूठा अहंकार — राजेन्द्र दानी

65 ग़ज़लें — विपिन जैन

साक्षात्कार

66 साहित्य के बग़ैर समाज की पहचान नामुमकिन (के. श्रीनिवासराव से बातचीत) — प्राची

श्रद्धांजलि

72 बेला बोस : बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न अभिनेत्री — प्रदीप सरदाना

75 ऊँची उड़ान में पंख समेट लिया — राजीव श्रीवास्तव

आज़ादी का अमृत महोत्सव

77 और तुरही बज उठी — रविचन्द्र गुप्ता

इस माह-75 वर्ष पूर्व

79 सौराष्ट्र की गीत-कथाएँ — झवेरचन्द मेघाणी

संगीत आजकल

81 हम तुम्हें यूँ भुला न पाएँगे — पंडित विजयशंकर मिश्र

मूल्यांकन

86 अछूता हृदयस्पर्शी आख्यान — प्रमोद शुक्ल

90 नदियाँ ब्याह नहीं करतीं — वैद्यनाथ झा

94 व्यंग्य : जीवन के गुण-दोष का दर्पण — संगीता

पुस्तक परिचय

97 भारतीय स्वाधीनता संग्राम — प्रियंका सिंह

98 मस्ती की पाठशाला — अभिषेक चतुर्वेदी

मुख्य सम्पादक : कुलश्रेष्ठ कमल

सम्पादक : फरहत परवीन

सम्पादन सहयोग : शुभ्रा सिंह

आवरण सज्जा : बिन्दु वर्मा / रेखाचित्र : सिद्धेश्वर

सम्पादकीय पत्र-व्यवहार

सम्पादक : आजकल प्रकाशन विभाग, कमरा नं. 601डी, सूचना भवन, सी.जी.ओ. कॉम्प्लेक्स, लोदी रोड, नई दिल्ली-110003 दूरभाष : 011-24362915

संयुक्त निदेशक (उत्पादन) : डी.के.सी. हृदयनाथ

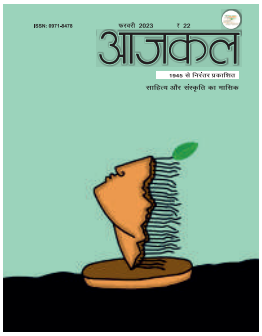
सदस्यता शुल्क : वार्षिक : 230 रुपये (सामान्य डाक से)
434 रुपये (रजिस्टर्ड डाक से)

पत्रिका न मिलने की शिकायत अथवा आजकल की सदस्यता लेने या पुराने अंक मँगाने के लिए pdjucir@gmail.com पर ईमेल करें या सम्पर्क करें- दूरभाष : 011-24367453

सदस्यता सम्बन्धी पत्राचार का पता :

अभिषेक चतुर्वेदी, सम्पादक (प्रसार), पत्रिका एकांश, प्रकाशन विभाग, कमरा नं. 779, सूचना भवन, सी.जी.ओ. कॉम्प्लेक्स, लोदी रोड, नई दिल्ली-110003

प्रकाशन विभाग के देशभर में स्थित विक्रय केन्द्रों की सूची के लिए देखें पृ.सं. 25



संग्रहणीय अंक

फरवरी 2023 अंक मिला। हर बार की तरह इस बार भी 'प्रसंगवश' बहुत अच्छा लगा जिसमें पुस्तक-संस्कृति पर बात की गई है। हमारे जीवन में पुस्तकों का बहुत महत्व है। राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी ने कहा है, "अच्छी पुस्तकें पास होने से हमें भले मित्रों के साथ की कमी नहीं खटकती। जितना ही मैं पुस्तकों का अध्ययन करता गया, उतना ही अधिक मुझे उनकी विशेषताएँ मालूम होती गईं।"

जार्ज बर्नार्ड शॉ ने भी कहा है, "विचारों के युद्ध में पुस्तकें ही अस्त्र हैं।"

इस अंक में 'समय का सन्दर्भ और आज की कविता' (शम्भु गुप्त) और 'सिंहल की भाषा' (सुनीति कुमार चटर्जी) लेख ज्ञानवर्धक और रोचक हैं। हबीब कैफ़ी की कहानी 'रेस का घोड़ा' और राजेश जैन की 'बीहड़' अच्छी लगीं। इस अंक की सभी कविताएँ एक से बढ़कर एक हैं। पुस्तक समीक्षाएँ उत्कृष्ट हैं।

-रमेश चंद्र शुक्ल, ऋषिनगर, शुक्लागंज (उत्तर प्रदेश)

प्रेरणाप्रद बातचीत

फरवरी 2023 अंक प्राप्त हुआ। आपने मेरी कविताएँ प्रकाशित की हैं। ठीक एक वर्ष पहले फरवरी 2012 (विनोद कुमार शुक्ल विशेषांक) में आपने मेरा लेख प्रकाशित किया था। इस अंक की सम्पादकीय आज की पुस्तक संस्कृति को समृद्ध करती है। अंक का पहला लेख 'समय का सन्दर्भ और इधर की कविता' आज के सन्दर्भों में बहुत प्रासंगिक और सर्जनात्मक लेख है। हालाँकि अपने लेख में जिन सम्पादकीय को मानक बनाया गया है वे सम्पादक भी उसी वैचारिक प्रदूषण के शिकार हैं जिसकी लेखक वकालत करता है। कथाकार चन्द्रमोहन प्रधान से बातचीत प्रेरणाप्रद है। कविताएँ सभी अच्छी हैं लेकिन पूनम सोनछात्रा की कविताएँ गहन अनुभूति और सौन्दर्यबोध की अभिव्यक्ति हैं। प्रसिद्ध आलोचक रामविलास शर्मा का संगीत-विमर्श लेख उनका नया मूल्यांकन प्रस्तुत करता है। 'आजकल' के रामविलास शर्मा विशेषांक में मेरा लेख प्रकाशित हुआ था। कहानियाँ सभी पठनीय हैं लेकिन 'रेस का घोड़ा' अद्‌भुत संवेदना की कहानी है जो संवेदनात्मक धरातल पर गहरे तक स्पर्श करती है। सभी किताबों का मूल्यांकन सार्थक है। 'परिकथा' के 100वें अंक का मूल्यांकन भी महत्वपूर्ण है। इतने कम मूल्य में इतनी महत्वपूर्ण सामग्री उपलब्ध कराने वाली हिन्दी की एकमात्र पत्रिका 'आजकल' है जिसे हमारे जैसा सर्वहारा लेखक भी ख़रीद कर पढ़ सकता है। मेरे कविता-संग्रह का नाम ही है, 'क़लम का दिहाड़ी मज़दूर' जो कि मैं हूँ।

–विवेक सत्यांशु, शिवनगर कालोनी, अल्लापुर, इलाहाबाद

कविताएँ पसन्द आईं

फरवरी, 2023 अंक प्राप्त हुआ। सभी सामग्री पठनीय है। विशेषकर 'श्रद्धांजलि के

अंतर्गत ज्याँ लुक गोदार को समर्पित प्रताप सिंह द्वारा लिखा गया आलेख 'गोदार की सिने-कला का आकाश'। अंक की सभी कविताओं ने भी प्रभावित किया। 'मूल्यांकन' स्तम्भ भी जानकारी से परिपूर्ण है।

–राम अवतार, लखनऊ

अच्छे अंक के लिए साधुवाद

साहित्य और संस्कृति की पत्रिका 'आजकल' का फरवरी, 2023 अंक पढ़कर महत्वपूर्ण लेखों/सामग्रियों पर अपनी प्रतिक्रिया देना आवश्यक दायित्व समझा। मधु वासुदेवन का आलेख 'रामविलास शर्मा का संगीत-विमर्श' जानकारीपरक लगा जो सुप्रसिद्ध समालोचक रामविलास शर्मा के भारतीय शास्त्रीय संगीत के प्रति रुचि और जानकारी को दर्शाता है। वे लगातार कहते थे, "भारतीय संगीत की दोनों पद्धतियाँ उनके लिए प्रीतिपात्र हैं जो उनकी संगीत विषयक समग्रतापरक दृष्टि एवं दार्शनिक गहनता को प्रमाणित करता था। रामविलास शर्मा सूफ़ी संगीत के प्रति भी विशेष रुचि रखते थे, यह इस लेख द्वारा ही पता चला। उन्होंने विश्व संगीत पर गहरा अनुसंधान किया था। वह भारतीय संगीत की सभी शाखाओं से परिचित थे। शास्त्रीय संगीत रामविलास शर्मा के दैनिक जीवन का हिस्सा था। गायन के अतिरिक्त वीणावादन उनको अच्छा लगता था। इस तरह की रुचिकर जानकारी इस लेख द्वारा प्राप्त हुई।

–सरिता सिंह, भागलपुर (बिहार)

स्मरणीय अंक

'आजकल' का फरवरी अंक विशेष स्मरणीय है। यूँ तो 'आजकल' पत्रिका के सभी अंक अपने-आप में विशिष्ट होते हैं परन्तु इस अंक में ज्याँ लुक गोदार पर लेख छापकर पत्रिका ने इस कलाकार को विशेष स्मरणांजलि दी है। गोदार की सोच अपने समय से बहुत आगे की थी। ऐसा अक्सर सुना जाता है कि विशेष बौद्धिक क्षमता वाले अपने समय से आगे का सोचते हैं और कई बार उनकी वह सोच प्रेरणा दे जाती है जो कुछ स्मरणीय छाप छोड़ जाती है।

इसके साथ ही एक अन्य लेख 'सिंहल की भाषा' जो कि पत्रिका के 75 वर्ष पूर्व अंक में छपा था, भी विशेष है। आज के समय में जब भारत अपने पड़ोसी राष्ट्रों के प्रतिविशेष रूप से सक्रिय मददगार के रूप में आगे आ रहा है, ऐसे में श्रीलंका और भारत की भाषाई एकता का स्मरण एक सकारात्मक सोच और ऊर्जा को पुष्ट करता है। पत्रिका ऐसे ही संग्रहणीय और स्मरणीय लेखों का प्रकाशन करती रहे और हमारे मन-मानस को तृप्त और समृद्ध करती रहे, यही कामना है।

–दिग्विजय सिंह, लखनऊ

हमारे विक्रय केन्द्र : नई दिल्ली : सूचना भवन, सी.जी.ओ. कॉम्प्लेक्स, लोदी रोड, दूरभाष : 011-24367260, **लखनऊ :** हॉल नं.1, दूसरी मंजिल, केन्द्रीय भवन, अलीगंज, दूरभाष : 0522-2225455, **कोलकाता :** 8, एस्प्लेनेड ईस्ट, दूरभाष : 33-22488030, **पटना :** बिहार : रा. सह. बैंक बिल्डिंग, अशोक राजपथ, दूरभाष : 0612-2683407, **मुम्बई :** 701 बी-विंग, सातवीं मंज़िल, केन्द्रीय सदन बेलापुर, नवीं मुम्बई, दूरभाष : 9522-27570686, **बंगलुरु :** एफ़ विंग, केन्द्रीय सदन, कोरामंगला दूरभाष : 080-25537244, **अहमदाबाद :** 4-सी, नेपच्यून टॉवर (एच.पी. पेट्रोल पम्प के निकट), नेहरू ब्रिज कॉर्नर, आश्रम रोड, दूरभाष : 079-26588669, **हैदराबाद :** कमरा नं. 204, द्वितीय तल, सी.जी.ओ. टॉवर्स, कावादिगुडा-500080, **चेन्नई :** राजाजी भवन, एनी बेसेन्ट नगर, दूरभाष : 044-24917673, **तिरुअनन्तपुरम :** गवर्मेंट प्रेस के निकट, दूरभाष : 041-2330650

प्रसंगवश

सन् 1929 से आरम्भ हुए फ़िल्म अवार्ड ऑस्कर ने फ़िल्म उद्योग की उत्कृष्टता को पहचान दिलाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। पिछले महीने भारत ने 95वें ऑस्कर अवाड्र्स में अपना झण्डा फहरा कर नया इतिहास रच दिया। उसने एक साथ दो सफलताएँ अर्जित कीं। जहाँ फ़िल्म निर्देशक एस.एस. राजामौली की फ़िल्म 'आरआरआर' के गीत 'नाटू नाटू' को सर्वश्रेष्ठ ओरिजनल गीत का पुरस्कार मिला, वहीं डॉक्यूमेंट्री फ़िल्म 'द एलिफ़ेंट व्हिस्परर्स' ने सर्वश्रेष्ठ डॉक्यूमेंट्री लघु फ़िल्म के लिए यह पुरस्कार प्राप्त किया। 'नाटू नाटू' गीत को विश्वपटल पर लाने में कंपोज़र एम.एम. कीरावनी और गायक द्वय राहुल सिपिलगुन तथा काल भैरव का भी विशेष योगदान है। इस तेलुगु एक्शन फ़िल्म को वैश्विक लोकप्रियता दिलाने में कलाकारों सहित सभी सम्बन्धित सदस्यों को भी बहुत-बहुत बधाई!

'नाटू नाटू' जब गोल्डेन ग्लोब पुरस्कार हेतु नामित हुआ था तब भी बहुत लोगों को विश्वास नहीं था कि गीत यह सम्मानित पुरस्कार जीतेगा। परन्तु देखिए कि कभी-कभी अविश्वसनीय लगने वाली चीज़ कितनी सीमाओं को लाँघते हुए ऐसा कर गुज़रती है कि दर्शक आश्चर्यमिश्रित मोह में पड़ जाते हैं। इस गीत ने न केवल गोल्डेन ग्लोब पुरस्कार अपने नाम किया बल्कि प्रतिष्ठित ऑस्कर्स के लिए भी नामित हुआ। लोग इसी बात का जश्न मनाने में व्यस्त थे कि चलो ऑस्कर्स में नामित होना भी एक उपलब्धि है कि तभी यह गीत हिन्दुस्तान की धरती पर ऑस्कर्स ले आया। इस गीत की ऐसी आलीशान जीत ने उन तमाम लोगों और परिस्थितियों में हौंसला भर दिया जिन्हें अपनी यात्रा और उसकी सफलता पर संदेह था जो अपनी जीत के स्वप्न को अविश्वसनीय मान बस रुक जाने का निर्णय लेने ही वाले थे कि उनके पाँवों में मानो पंख लग गए।

एक अन्य जश्न का अवसर था भारत में साहित्य के प्रतिष्ठित पुरस्कार साहित्य अकादमी सम्मान 2022 की प्राप्ति का। सभी जानते हैं कि साहित्य के मूल भाव का

संप्रेषण तभी संभव है जब भाषा सुगठित एवं व्यवस्थित हो। ऐसा तभी हो सकता है जब भाषा पर लेखक की पकड़ सहज और पुष्ट हो। भाषा विचार और भाव के सम्प्रेषण का महत्वपूर्ण माध्यम है। भाषा विशेषकर सम्पर्क भाषा की समृद्धि में साहित्य का व्यापक रूप से अध्ययन, अनुवाद और अनुसंधान हो रहा है। साहित्य को जीवंतता प्रदान करने में लेखक/रचनाकार का विशेष योगदान होता है क्योंकि वह अपनी लेखनी द्वारा समाज में व्याप्त गतिविधियों, क्रियाकलापों, समस्याओं और उसके निदान पर प्रकाश डालता है। जब उसके इस प्रयास और श्रम का संज्ञान लिया जाता है, सराहा जाता है तो उसे सुखद अनुभूति प्राप्त होती है। वर्ष 2022 का प्रतिष्ठित साहित्य अकादमी पुरस्कार मिलना सभी सम्मानित लोगों और साहित्यिक प्रेमियों के लिए पिछले दिनों गौरवमयी अवसर रहा। हिन्दी के लिए बद्री नारायण को उनके काव्य-संग्रह 'तुमड़ी के शब्द' सहित सभी पुरस्कृत रचनाकारों को हार्दिक बधाई!

सुख और दुख जीवन के दो पहिए हैं। हर्ष के साथ विषाद होना लाज़िमी है, और इसे हमें स्वीकार करना होगा। गत माह संगीत की कई महान विभूतियाँ हमसे बिछुड़ गईं जिनमें कैराना घराने के पंडित मणिप्रसाद; दरभंगा घराने के सुप्रसिद्ध ध्रुपद गायक पंडित अभय नारायण मल्लिक; गायक और संगीत उन्नायक पंडित विजय किचलू; मोहिनीअट्टम नृत्य को अंतरराष्ट्रीय स्तर पर पहचान दिलाने वाली विदुषी कनक रेले; बनारस घराने के प्रतिनिधि कथक नृत्याचार्य गुरु जितेंद्र महाराज और सुप्रसिद्ध पार्श्व गायिका वाणी जयराम के नाम प्रमुख हैं। इन विभूतियों का योगदान हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत में अविस्मरणीय है। सौ बरस से भी ज़्यादा की अपनी गौरवशाली यात्रा में सिनेमा, विशेषकर हिन्दी सिनेमा विभिन्न चरणों से गुज़रा है। इसमें बेशुमार परिवर्तन आए हैं। भारतीय सिनेमा के स्वर्णिम योगदान में कलाकारों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है, उन्हें भी इस क्षेत्र में संघर्ष और उतार-चढ़ाव का सामना करना पड़ता है। ऐसी ही दो महान हस्तियाँ पिछले दिनों हमसे विदा हो गईं— नृत्यांगना और अभिनेत्री बेला बोस और हास्य अभिनेता, निर्देशक, निर्माता, पटकथा-लेखक सतीश कौशिक। इन्होंने संघर्षमय जीवन जीकर फ़िल्म उद्योग पर अपनी अमिट छाप छोड़ी है।

इस माह की 17 तारीख़ को भक्तिपरक और श्रृंगारिक गीतों के रचयिता कविवर गोपाल सिंह नेपाली की 60वीं पुण्यतिथि है। उन्होंने अल्प रचनाकाल में हिन्दी फ़िल्मों को बहुत कुछ दिया। 'आजकल' पत्रिका उन्हें स्मरणांजलि अर्पित करती है।



नीलिमा सिन्हा

उत्तर-वैश्विकता
यह समय, संकट और समाधान

'देशकालौ समासाद्य विक्रमेत विचक्षणः।
देशकालव्यतीतो हि विक्रमो
निष्फलो भवेत्।'
'बुद्धिमान व्यक्ति देशकाल को समझ कर तदनुरूप कार्य करते हैं। देशकाल की उपेक्षापूर्वक किया गया कार्य निष्फल हो जाता है।'
('महाभारत', शान्तिपर्व, 140/28)

जिस काल में हम जी रहे हैं वह उत्तर-वैश्विकता का काल है। प्रत्येक काल की अपनी कुछ विशेष प्रवृत्तियाँ होती हैं जिन प्रवृत्तियों से कुछ ऐसी परिस्थितियाँ उपज जाती हैं जो उस काल के सम्मुख कुछ संकट उपस्थित कर देती हैं, ऐसे संकट जो समस्त मानव-प्रजाति और उससे भी आगे, समस्त प्रकृति के लिए विनाश की चेतावनी प्रस्तुत करने लगते हैं। इस चरम विघटनकारी संकट से जूझने के लिए काल को समझना, काल से संवाद आवश्यक होता है। इसी उद्देश्य से वर्तमान समय और उसके संकटों की पड़ताल करता यह आलेख प्रस्तुत है।

यहाँ प्रारम्भ में ही यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि यह पड़ताल चिन्तनमूलक है। साथ ही यह कह देना भी उचित है कि विचार कभी बाँझ नहीं होते, सदा-सर्वदा उर्वर होते हैं, अर्थक्रियाकारित्व-युक्त। यही कारण है कि युग की विचारपरक समीक्षाएँ ही युग की समस्याओं के समाधान और संकट के निवारण प्रस्तुत करने में सक्षम होती हैं।

वर्तमान युग को 'उत्तर-वैश्विकता' का युग कहा जाता है। सामान्यतः 'वैश्विकता' के युग का प्रारम्भ पिछली सदी के अंतिम दशक से समझा जाता है। वैश्विकता के समस्त काल को मोटे तौर पर दो भागों में बाँटा जाता है- वैश्विकता और उत्तर-वैश्विकता। 'वैश्विकता' का काल 'वैश्विकता के उदय का काल' है और 'उत्तर-वैश्विकता' का काल 'वैश्विकता की समीक्षा का काल' है। वैसे तो उत्तर-वैश्विकता वैश्विकता के ही काल का विस्तार है किन्तु कुछ अंशों में यह वैश्विकता से भिन्न भी है, जिस विभेद की चर्चा हम इस आलेख में आगे करेंगे, फ़िलहाल तो इतना ही कि उत्तर-वैश्विकता

सम्पर्क : *ई-मेल : neelima_sinha04@rediffmail.com*

के इस काल में युग पर वैश्विकता के काल में उभरे प्रभाव बिलकुल स्पष्ट दिखने लगे हैं जिससे उत्तर-वैश्विकता के इस काल में वैश्विकता के युग की यथार्थपरक समीक्षा सम्भव हुई है।

जैसाकि ऊपर कहा जा चुका है, 'उत्तर-वैश्विकता' का यह काल 'वैश्विकता' के काल का विस्तार है। 'वैश्विकता' उस 'उत्तर-आधुनिक' युग की उपज है, जिसकी भूमिका यूरोपीय पुनर्जागरण के काल में 'आधुनिक युग' ने लिख दी थी।

आधुनिकता के यूरोप के उस 'आधुनिक युग' में यूरोपीय मध्ययुगीन सामंतवाद के स्थान को औद्योगिक-पूँजीवाद ने ग्रहण किया और चर्च के सिर से सम्प्रभुता का ताज उतर कर तर्क, बुद्धि और विज्ञान के सिर पर जा चढ़ा। आधुनिकता का यह काल यूरोप में व्यक्तिवाद, मशीनवाद, परिवर्तनवाद, उद्योग, वैज्ञानिकता, ऐन्द्रिकता जैसी प्रवृत्तियों का काल था। इस काल में यूरोप में परम्परा-विरोधी समाज तथा उपनिवेशवादी राजनीति का उदय हुआ जिसके विश्वव्यापी परिणामों से हम सभी परिचित हैं।

प्रकृति का नियम यह है कि प्रत्येक व्यवस्था, अपने भीतर से अपना प्रतिकार या अपनी प्रति-व्यवस्था भी उत्पन्न करती है। आधुनिकता ने भी अपने भीतर से अपने प्रतिवाद उत्पन्न किए। उपनिवेशवाद के इस युग में उपनिवेशवाद की प्रतिक्रियास्वरूप विश्वभर में राष्ट्रवाद का एक उत्कट आंदोलन उदित हुआ। साथ ही, आधुनिक युग में तीव्र गति से हुए औद्योगीकरण ने जिस पूँजीवाद को जन्म दिया था, उसी पूँजीवाद की प्रतिक्रियास्वरूप इस काल में साम्यवाद का भी उदय हुआ। मशीनीकरण के इस युग में मशीनों ने जिस प्रकार मनुष्य की गरिमा नष्ट की उसके विरुद्ध इस काल में अस्तित्ववाद का उदय हुआ, बुद्धिवाद और अनुभववाद के द्वन्द्व से ज्ञानमीमांसीय उपयोगितावाद का उदय हुआ, आदि। वाद-प्रतिवाद के इस घात-प्रतिघात की चरम परिणति दो विश्वयुद्धों में हुई जिनके परिणामस्वरूप राजनैतिक उपनिवेश भी टूटे, संकीर्ण राष्ट्रवाद और जातीय अहंकार के मिथक भी ध्वस्त हुए और एक नूतन संवाद के रूप में 'उत्तर-आधुनिकता' के काल का उदय हुआ।

यह सत्य है कि आधुनिकता से उत्तर-आधुनिकता की कुल यात्रा-कथा मात्र इतनी ही नहीं है। छह-सात सौ वर्षों के उस पूरे इतिहास को कहने का न तो यहाँ अवकाश है ना ही कोई बहुत आवश्यकता। यहाँ तो उस पूरी कथा के एक अंश मात्र को वर्तमान को समझने के लिए सन्दर्भ-रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है।

वैसे तो 'आधुनिकता' की भाँति ही 'उत्तर-आधुनिकता' भी युग की एक विशेष प्रवृत्ति का ही नाम है किन्तु कालक्रम की दृष्टि से उत्तर-आधुनिक काल का उदय द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात हुआ। यह काल युद्ध से क्षत-विक्षत उस मनुष्यत्व के करुण क्रंदन का काल था जो दो-दो विश्वयुद्धों में पराजित तो हुआ किन्तु टूटा नहीं। इस युद्धोत्तर काल के मनुष्य को युद्ध नहीं शांति चाहिए थी, विनाश नहीं विकास चाहिए था। उत्तर-आधुनिक युग का यह मनुष्य दो-दो विश्वयुद्धों में उत्कट-राष्ट्रवाद और जातीय अहंकार की संकीर्णताओं के दुष्परिणाम देख चुका था (याद करें आइंस्टाइन को जिन्होंने 'राष्ट्रवाद' को 'मनुष्य प्रजाति का खसरा' कहा) अतः उत्तर-आधुनिक युग का यह

मनुष्य अब 'राष्ट्र' नहीं, 'विश्व' चाहता था। अति-बौद्धिकता और अति-धनलोलुपता के दुष्परिणाम दो विश्वयुद्धों के रूप में झेल चुकी मनुष्य-प्रजाति अब मानवीय संवेदना और वस्तुजगत की अनुभवाश्रित तर्कसम्मत व्याख्या (तर्कनिष्ठ अनुभववाद) की समझ के बीच अपने होश नए सिरे से सम्भाल रही थी।

कोई भी युग अपने भूतकाल की प्रतिक्रियाओं की उपज होता है जहाँ वह अपने इतिहास की समीक्षा करते हुए उसकी कुछ प्रवृत्तियों के विरुद्ध अपनी प्रतिक्रियाएँ भी व्यक्त करता है और कुछ प्रवृत्तियों को यथारूप अपनाते हुए कालक्रम में उनका विस्तार भी कर डालता है। इसी अर्थ में कोई भी काल अपने पूर्ववर्ती काल का विरोधी भी होता है और विस्तार भी।

यहाँ तनिक ठहर कर यह कह देना भी ज़रूरी है कि यद्यपि 'आधुनिकता' का उदय मध्ययुगीन यूरोपीय राज-समाज-संस्कृति के उपोत्पाद के रूप में हुआ किन्तु यूरोपीय उपनिवेशवाद के विस्तार के साथ ही आधुनिकता का विस्तार विश्वभर में हुआ। आधुनिकता यद्यपि मूलतः यूरोप की उपज थी जिसपर यूरोपीय सभ्यता-संस्कृति के रंग सर्वाधिक स्पष्ट थे किन्तु जैसे-जैसे यूरोपीय उपनिवेशवाद का विस्तार विश्वभर में होता चला गया वैसे-वैसे आधुनिकता भी विश्वव्यापी होती चली गई। आधुनिकता के इस विस्तार के साथ 'आधुनिकता' में अनेक सभ्यताओं और संस्कृतियों के रंग घुलते-मिलते चले गए, फलतः 'आधुनिकता' क्रमशः एक बहुरंगी संस्कृति और परस्पर-विरोधी प्रवृत्तियों के घालमेल का भड़कीला रूप लेती चली गई। इस बहुरंगी संस्कृति में यद्यपि यूरोपीय, विशेषतः ब्रिटिश, सभ्यता-संस्कृति के रंग सर्वप्रमुख थे किन्तु विविध देशों में यह 'आधुनिक सभ्यता-संस्कृति' स्थानीय प्रभावों से अछूती नहीं रह सकी जिसके कारण द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात, उत्तर-आधुनिकता के उदय-काल से ही, उत्तर-आधुनिकता में 'वैश्विकता' के रंग स्पष्ट दिखने लगे थे।

जैसाकि ऊपर कहा जा चुका है, द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात आधुनिकता की यह धारा उत्तर-आधुनिकता में बदल गई। 'आधुनिकता' मूलतः 'उद्योग और विज्ञान' का युग था,'उत्तर-आधुनिकता' उद्योग, व्यापार, विज्ञान और तकनीक का काल था। वैचारिक दृष्टि से उत्तर-आधुनिकता के इस काल में 'तर्क और बुद्धि' 'उपयोगिता' में समाहित हुए। यद्यपि दार्शनिक चिन्तन के पटल पर उपयोगितावाद का उदय आधुनिक युग में ही जेम्स, पर्स और डिवि के उपयोगितावादी चिन्तन के साथ हो चुका था किन्तु उत्तर-आधुनिकता के काल में उपयोगितावाद का शुमार 'उत्तर-आधुनिक युग की प्रवृत्तियों' में हुआ। इस युग में उपयोगितावाद की यह प्रवृत्ति इतनी प्रबल हुई कि यह युग 'इस्तेमाल करो और भाड़ में झोंको' ('यूज़ एण्ड थ्रो' अथवा 'हायर एण्ड फ़ायर')की प्रवृत्ति का युग बन बैठा। इस युग में वही चला जो उपयोगी था। यह इस युग की उपयोगितावादी दृष्टि का ही कमाल था कि 'यूज़ एण्ड थ्रो' की नैतिकता के तहत तमाम मानवीय संवेग और उनसे उपजे रिश्ते बेमानी होते चले गए। अब लोगों को घर-परिवार नहीं चाहिए थे क्योंकि वे उपयोगी नहीं रहे थे। अब लोगों को बच्चे नहीं चाहिए थे, माँ-बाप नहीं चाहिए थे, पति-पत्नी के रिश्तों में स्थायित्व नहीं चाहिए था, स्थायी नौकरी, घर.....ऐसा कुछ भी नहीं

चाहिए था जो उनकी दृष्टि में उपयोगी नहीं था। सामाजिक, पारिवारिक और संवेगात्मक दृष्टि से यह काल एक व्यापक उथल-पुथल का दौर था। इस काल में उपजी इन प्रवृत्तियों के परिणामस्वरूप घर-परिवार टूटे, मानवीय संवेदनाएँ बेदर्दी से कुचली गईं, मनुष्य से मनुष्य का सम्बन्ध टूटा, सामाजिक संरचनाओं का स्थायित्व ध्वस्त हुआ...और व्यक्ति अवसाद तथा कुण्ठा से ग्रस्त हुआ। इस दौर में हमने बालू की भीत के तरह के एक ऐसे समाज की रचना कर डाली जहाँ लोग रहते तो ज़रूर एकसाथ थे किंतु उनके बीच कोई आंतरिक जुड़ाव नहीं था।

इस उत्तर-आधुनिक युग पर यह उपयोगितावाद इतना हावी रहा कि राजनैतिक और आर्थिक चिन्तन की दृष्टि से यह काल उद्योग, उत्पादन, बाज़ार और पूँजी के दबाव के आगे साम्यवाद के पराभाव का साक्षी रहा, यद्यपि इस काल में वह भौतिकवाद भी ख़ूब परवान चढ़ा जिस की आधार-भूमि से मार्क्स ने अपने साम्यवाद की नींव रखी थी। इस काल में भौतिकवाद और वस्तुवाद ने विज्ञान, उद्योग, व्यापार और तकनीक के संयोग से एक अजब क़िस्म का चमत्कारिक बाज़ार रचा। इस बाज़ार में भौतिक सुख-सुविधाओं और ऐन्द्रिक तुष्टिकरण के निमित्त कुछ ऐसे नए उत्पाद थे जिनकी इससे पहले कोई ज़रूरत मानव जाति ने अनुभव नहीं की थी, या की भी थी तो इससे पहले मनुष्य ने ऐसा कभी नहीं सोचा था कि इन वस्तुओं के बग़ैर ज़िन्दगी इतनी दूभर हो उठेगी। ये उत्पाद इतनी बड़ी संख्या में बाज़ार में आए और बाज़ार ने विज्ञापन का कुछ ऐसा मायाजाल रचा कि अब उन वस्तुओं के बग़ैर मनुष्य को अपना जीवन अकारथ लगने लगा। उत्पादन में मशीन का प्रयोग तो आधुनिक काल से ही शुरू हो गया था जिससे उत्पादन बहुगुणित हो उठे थे, अब तकनीक में विकास के कारण उत्पादन इतना बढ़ा कि मौजूदा बाज़ार छोटा पड़ने लगाा। दूसरी ओर बड़े उद्योग व्यापार के लिए बड़ी पूँजी की भी आवश्यकता हुई। आधुनिक युग की वे स्थितियाँ इस उत्तर-आधुनिक काल में कमोबेश फिर से उदित हुईं जिनके दबाव में आधुनिक युग में राजनैतिक उपनिवेश बने थे किन्तु विश्व राजनैतिक उपनिवेशवाद के दुष्परिणाम दो विश्वयुद्धों के रूप में देख चुका था अतः अब इस युग में राजनैतिक उपनिवेश भी सम्भव नहीं थे। इसी उहापोह के बीच व्यापारिक-व्यवसायिक दबाव के कारण 'उदारीकरण' के नाम पर युग ने आर्थिक उपनिवेश रचने शुरू कर दिए। एक बार फिर वही उपनिवेशवाद एक नए रूप में 'मुक्त पूँजी और व्यापार के अबाध प्रवाह' की प्रक्रिया के द्वारा 'वैश्विकता' के नाम से विश्व-पटल पर पुनः उदित हुआ। तकनीक के विकास ने इस काल में भौतिक दूरियाँ मिटा दीं जिससे 'विश्व ग्राम' की परिकल्पना भी फलित हुई। कहने को विश्व अब एक 'ग्राम' हो उठा जो नैतिक-आदर्शवादियों को 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की उदारवादी नैतिक अवचेतना से अनुप्राणित भले दिखा हो, किन्तु वस्तुतः इस विश्व-ग्राम का 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के उस नैतिक आदर्श से कुछ लेना-देना नहीं था। यह 'विश्व ग्राम' पूर्णतः आर्थिक, यान्त्रिक और भौतिक-पूँजीवादी विकास का एक कार्यक्रम भर था।

कालक्रम की दृष्टि से 'वैश्विकता' के उदय का काल बीसवीं शताब्दी का अंतिम दशक समझा जाता है। इस काल में उत्पाद और पूँजी के दबाव में विश्व बाज़ार की स्थापना हुई। अब बाज़ार बहुराष्ट्रीय

हुआ, बाज़ार की पूँजी बहुराष्ट्रीय हुई, उद्योग-व्यापार बहुराष्ट्रीय हुए। इस काल ने वास्तविक जगत के समानांतर एक आभासी जगत भी रच डाला। राष्ट्रवाद के गढ़ तो दो विश्वयुद्धों ने पहले ही ध्वस्त कर डाले थे, वैश्विकता ने राष्ट्रवाद की रही-सही चूलें भी हिला डालीं। विश्व ग्राम के झूले में डोल रहे लोग अब 'वैश्विक-नागरिकता' के भ्रम पालने लगे थे।

तब से अब तक प्रायः तीन दशक बीत चुके हैं। अब हम वहाँ खड़े हैं जहाँ से वैश्विकता की कुल यात्रा की वास्तविक समीक्षा सम्भव है। 'वैश्विकता की समीक्षा' का यह काल ही 'उत्तर-वैश्विकता' का काल है। यह वह काल है जहाँ से युग कुछ नई प्रवृत्तियों के साथ चल पड़ा है। उत्तर-वैश्विकता का यह युग पिछली सदी की विभिषिका अभी भूला नहीं है। यह उत्तर-वैश्विक युग यह भी देख रहा है कि वैश्विकता के युग ने विकास के जिस महल को खड़ा किया है वह महल इतने कमज़ोर खंभों पर खड़ा है कि यह महल बालू की भीत की तरह कभी भी भहरा कर गिर सकता है। इस सन्दर्भ का सच यह है कि वैश्विकता ने एक ओर तो 'विकास' के अभूतपूर्व द्वार खोले हैं किन्तु दूसरा ओर वैश्विकता ने विश्व के लिए कुछ नए संकट भी गढ़ डाले हैं। ये वैश्विकता के युग की वे प्रवृत्तियाँ और तज्जन्य संकट हैं जिनकी पहचान मानव-प्रजाति के सुखी भविष्य के लिए अपरिहार्य है।

यहाँ तनिक रुक कर हम यह पड़ताल कर लें कि इस उत्तर-वैश्विक युग की मुख्य प्रवृत्तियाँ और संकट क्या-क्या हैं! इस सन्दर्भ में ध्यातव्य है कि प्रवृत्तियाँ परिवेश की उपज हैं। प्रवृत्तियाँ परिवेश को प्रभावित भी करती हैं और परिवेश से प्रभावित भी होती हैं। परिवेश एक जटिल संरचना है जिस जटिलता में परिवेश के संकट भी शामिल हैं। अतः युग की प्रवृत्तियों को ठीक-ठीक समझने के लिए युग के संकट को भी समझना बहुत ज़रूरी है।

शब्दकोशों के अनुसार 'संकट' एक ऐसी कष्टप्रद अथवा पीड़ादायी स्थिति है जो अयाचित-अनायास उत्पन्न होती है और जिसका निदान पीड़ामुक्ति के लिए अनिवार्य होता है। अंग्रेज़ी शब्दकोशों में सामान्यतः 'संकट' के लिए समतुल्य अंग्रेज़ी शब्द 'क्राइसिस' का प्रयोग किया जाता है। 'क्राइसिस' को परिभाषित करते हुए कहा गया है कि क्राइसिस अथवा 'संकट' वस्तुस्थितियों की एक ऐसी जटिल संरचना है जो किसी जाति, व्यवस्था, समूह को अस्थायित्व की ओर ले जाती है और कभी-कभी तो यह अस्थायित्व इस जाति, व्यक्ति अथवा इस समूह को अंतिम तौर पर समाप्त भी कर देता है।

संकट की इस परिभाषा का विश्लेषण करें तो 'संकट' के निम्नलिखित संघटक तत्त्व स्पष्ट होते हैं-

क. संकट किसी जटिल व्यवस्था में ही उत्पन्न होता है। सरल संरचना या व्यवस्था संकट मुक्त होती है। साथ ही यह भी कि जो व्यवस्था या संरचना जितनी अधिक जटिल होती है उसके संकटग्रस्त होने की सम्भावना उतनी ही अधिक होती है। वैश्विकता का काल मानव जाति के अबतक के ज्ञात इतिहास का सर्वाधिक जटिल काल है अतः इस काल के संकटग्रस्त होने की सम्भावना सर्वाधिक प्रबल भी दिखती है।

ख. संकट विद्यमान परिस्थिति में एक औचक, बड़ा औ र अप्रत्याशित परिवर्तन

उपस्थित कर देता है। परिवर्तन प्रकृति का अपरिवर्तनीय नियम है। हम परिवर्तन को नहीं रोक सकते, अलबत्ता परिवर्तन की गति को धीमी कर सकते हैं, बहुत प्रयास करके परिवर्तन की दिशा भी बदल सकते हैं।

परिवर्तन दो प्रकार के होते हैं- सकारात्मक और नकारात्मक। सकारात्मक परिवर्तन विकासोन्मुखी होते हैं और नकारात्मक परिवर्तन विनाशोन्मुखी। सामान्यतः यह समझा जाता है कि 'संकट' जिन परिवर्तनों को अनायास ही उपस्थित कर देता है वे परिवर्तन नकारात्मक अथवा विनाशोन्मुखी होते हैं, तथापि कुछ अन्य चिंतक ऐसा समझते हैं कि 'संकट' के द्वारा उत्पन्न परिवर्तन त्वरित रूप से भले विकास की धारा के विपरीत दिखें, इनके दूरगाामी परिणाम विकास की गति को बहुगुणित कर देते हैं, जैसे, द्वितीय विश्वयुद्ध के परिणाम तात्कालिक रूप से चाहे जितने भी भयावह रहे हों, इसके दूरगाामी परिणाम के रूप में विश्व युद्ध के विरुद्ध एकजुट होकर पुनर्गठित हुआ जिससे विश्व के समेकित विकास की गति बहुगुणित हुई।

मेरी समझ में, जब मौजूदा व्यवस्था अपने समय की चुनौतियों का सामना करने में सक्षम नहीं रह जाती तो व्यवस्था अपने भीतर से ही एक ऐसी अयाचित स्थिति औचक रूप से उपस्थित कर देती है जो अपने तीव्रतर और अप्रत्याशित परिणामों के कारण इतनी कष्टप्रद दिखने लगती है कि हम इसे 'संकट' का नाम दे देते हैं, किन्तु वास्तविक रूप में यह 'संकट' मौजूदा अक्षम व्यवस्था को एक ऐसी नवीन, सक्षम व्यवस्था में रूपांतरित करने का उपकरण होता है जो व्यवस्था अपेक्षाकृत दीर्घ काल तक प्रकृति के विकास और मानव जनित विकास में तालमेल बनाए रखने में सक्षम होती है। इसीलिए प्रो. जेम्स वेनिटी कहते हैं कि 'संकट' वर्तमान अक्षम व्यवस्था के सक्षम व्यवस्था में रूपांतरण की एक प्रक्रिया है।

ग. संकट लचर कार्य-प्रणाली की उपज है। कोई भी संकट व्यवस्था में एक नए, त्वरित और विराट परिवर्तन की माँग करता है। इस अर्थ में 'संकट' 'सम्पूर्ण व्यवस्था का विनाश' (टोटल कोलैप्स) नहीं है अपितु 'एक विराट परिवर्तन' है जो यह बतलाता है कि यद्यपि तन्त्र अथवा व्यवस्था अब भी चल ही रही है किन्तु यह संचालन संव्यवस्थित तथा सुचारू रूप में नहीं हो रहा है। संकट यह बतलाता है कि विकास की गति के पक्ष में वर्तमान व्यवस्था एक विराट और त्वरित परिवर्तन की माँग कर रही है जिसको अब और अधिक टाला नहीं जा सकता।

घ. कोई भी व्यक्ति-विशेष अथवा समूह-विशेष कभी भी किसी भी व्यवस्था के लिए कोई संकट उपस्थित नहीं कर सकता। संकट व्यवस्था की अंतः-उपज है। संकट व्यवस्था में ही अंतर्भूत होता है और इस संकट का समाधान भी व्यवस्था में ही अंतर्भूत होता है। आवश्यकता उस संकट और उसके समाधान को पहचान कर व्यवस्था में तदनुरूप परिवर्तन की होती है।

शब्दांतर से, व्यवस्था से बाहर जाकर व्यवस्था के संकट को दूर नहीं किया जा सकता। साथ ही यह भी याद रहे कि कोई भी व्यवस्था किन्हीं तथ्यों, परिस्थितियों अथवा वस्तुस्थितियों का एक जटिल समूह होती है।

व्यवस्था के संकट भी किन्हीं तथ्यों, परिस्थितियों अथवा वस्तुस्थितियों के जटिल समूह ही होते हैं, अतः किसी भी संकट

का समाधान व्यवस्था में मात्र एक या दो परिवर्तनों से सम्भव नहीं। वस्तुतः व्यवस्था तथ्यों और परिस्थितियों की अविछिन्न शृंखला है अतः व्यवस्था के एक अंश के आलोड़न-मात्र से संपूर्ण व्यवस्था में आलोड़न उत्पन्न होते हैं।

व्यवस्था के इस आलोड़न के, व्यवस्था के संकट के समाधान के परिणाम सदैव दोतरफ़ा होते हैं। इस क्रम में कुछ ज़रूरी और शुभ वस्तुएँ भी नष्ट होती हैं और कुछ अशुभ स्थितियाँ भी उत्पन्न हो जाती हैं। 'संकट के समाधान' की सबसे बड़ी चुनौती 'शुभ के संरक्षण और अशुभ के विनाश' की होती है।

'संकट के समाधान' का अर्थ है- 'व्यवस्था में जारी परिवर्तन की दिशा में बदलाव'। यह बदलाव भी दोतरफ़ा ही होता है। इस बदलाव के दो आवश्यक चरण होते हैं- 1. विनाशोन्मुख परिवर्तन की गति को विलंबित करना, तथा 2. विकासोन्मुख परिवर्तन की गति को तेज़ करना। बहुत बार परिवर्तन की दिशा में बदलाव के कारण विनाशोन्मुख परिवर्तन स्वतः नष्ट हो जाते हैं।

अब हम इस प्रश्न में प्रविष्ट हों कि वैश्विकता की मुख्य प्रवृत्तियाँ क्या हैं?

वैश्विकता की मुख्य प्रवृत्तियों में सर्वाधिक प्रकृष्ट विज्ञान, तकनीक, पूँजी और उद्योग-व्यवसाय का अबाध अंतरराष्ट्रीय प्रवाह है। इनके अबाध प्रवाह वाले इस युग में राष्ट्रों के बीच तकनीक, पूँजी और उद्योग-व्यवसाय पर क़ब्ज़े की होड़ जारी है। यह होड़ इतनी जटिल और मारक है कि अब यह एक अभूतपूर्व युद्ध की भूमिका लिखने लगी है। विज्ञान और तकनीक का विकास इस युद्ध को विनाश की एक ऐसी चुनौती के रूप में प्रस्तुत कर रहे हैं जिसकी झलक इसके पूर्व सिर्फ़ 'महाभारत' में देखने को मिलती है। शब्दांतर से, उत्तर-वैश्विकता का सबसे बड़ा भौतिक संकट महायुद्ध है।

उत्तर-वैश्विकता के इस काल को 'महामारी का काल' भी कहा जा रहा है। बहुत लोग इस महामारी को 'जैविक युद्ध' बतला रहे हैं। अगर यह सच है तो इस काल-विशेष का एकमात्र संकट 'महायुद्ध' है, चाहे वह जैविक युद्ध के रूप में हो, परमाणु युद्ध के रूप में हो, अथवा अन्य किसी भी युद्ध के रूप में हो।

विश्व-पटल पर इस महायुद्ध की आशंका ने वैश्विक स्तर पर मानव समाज के भीतर 'भय' और 'असुरक्षा' के भाव उत्पन्न कर दिए हैं। आज का वृहत्तर मानव समाज अपने अस्तित्व को लेकर अत्यंत आशंकित और भयभीत है। अपने अस्तित्व के प्रति यह भय और असुरक्षा के भाव ही इस उत्तर-वैश्विक युग के सबसे बड़े वैचारिक संकट हैं।

प्रश्न है कि आज का मनुष्य इस महायुद्ध से कैसे बचे? वैश्विकता ने इस उत्तर-वैश्विक काल के मानव के सम्मुख जो संकट उपस्थित कर दिए हैं, उन संकटों के समाधान क्या हों?

इतना तो तय है, कि आज जो संकट हम झेल रहे हैं वे संकट किसी एक दिन में या आज के आज नहीं उपजे। काल, जिसे व्यवहारिकता की दृष्टि से हम भूत, भविष्य और वर्तमान के खण्डों में बाँट देते हैं, एक और अविछिन्न है। हमारा वर्तमान हमारे भूतकाल के कर्मों का परिणाम होता है। आज उत्तर-वैश्विकता के इस युग में जिन संकटों का सामना हम कर रहे हैं, इनके बीज बहुत पहले हमारे पूर्वजों ने, हमारी पूर्व की पीढ़ियों

ने बो दिए थे। आज जिन संकटों से हम जूझ रहे हैं, वस्तुतः उनका इतिहास बहुत पुराना है। फ़िलहाल अपनी बात हम बहुत पीछे से नहीं, वैश्विकता से ही शुरू करें।

जैसाकि ऊपर कहा गया है, पिछली सदी का अंतिम दशक वैश्विकता के उदय का काल था। इस युग में विज्ञान, तकनीक, पूँजी और व्यवसाय की चौकड़ी राजनैतिक सम्प्रभुता की सीमाओं को तो नष्ट नहीं कर सकी किन्तु इस चौकड़ी ने अर्थव्यवस्था के छद्म में लपेट कर एक ऐसे विश्व ग्राम की रचना कर डाली जहाँ पूँजी का प्रवाह और बाज़ार की व्यवस्था अबाध हो उठी। सूचना तकनीक के विकास ने भौतिक दूरियों को समेट दिया। फलतः बाज़ार बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के लिए मुफ़ीद हो उठा। इस काल में बाज़ारवाद इतना हावी हुआ कि राजनीति, अर्थनीति, घर, परिवार, मानवीय सम्बन्ध... बाज़ार के सामने सभी बौने हो उठे। इस युग की एक ही नैतिकता थी- बाज़ार! इस बाज़ार ने युग के ज्ञान, विज्ञान, नीति, धर्म, संस्कृति...सभी को अपने लपेटे में ले लिया। यह युग सूचना का युग था। इस काल में यह सूचना समय पर इतनी हावी हुई कि 'सूचना' और 'ज्ञान' का भेद ही लुप्त हो गया। बाज़ार के दबाव में ऐसी मशीनें विक सित की गईं जो अथाह सूचनाओं को अपने भीतर समेट सकती थीं और उँगली के एक इशारे पर बटन दबाते ही क्षणभर में कोई भी सूचना प्रस्तुत कर सकती थीं। ये मशीनें इतनी सक्षम हुईं कि अपने भीतर संग्रहित सूचनाओं को कलन विधि (एल्गोरिदम) के माध्यम से सजा-समेट कर मनुष्य की वास्तविक समस्याओं के यान्त्रिक समाधान प्रस्तुत करने लगीं। अनुभवी से अनुभवी डाक्टर जिन इंसानी मर्ज़ों को समझ नहीं पाते थे, ये मशीनें इन रोगों को पहचान कर उनके इलाज तक बताने लग गईं। तीक्ष्णतर इंसानी दिमाग़ जिन समस्याओं के समाधान ढूँढने के लिए सिर पटकने में लगा रह जाता था, ये मशीनें उनका समाधान पलक झपकते हाज़िर करने लगीं।

कहें तो वैश्विकता के इस काल में अनुभव, तर्क, बुद्धि–सभी निरर्थक हुए। अर्थपूर्ण रहे तो सिर्फ़ डाटा और एल्गोरिदम। मज़े की बात यह कि यह एल्गोरिदम या कलन-प्रणाली भी एक प्रकार का 'डाटा' ही था जिसे गणितीय प्रक्रिया में पिरो दिया गया था। उत्तर-आधुनिक युग में दार्शनिकों ने जिस 'सेंस-डाटा' की बात की थी, वैश्विकता के काल में उसमें से 'सेंस' अथवा 'बोध' लुप्त हुआ और बोधरहित 'सूचना' अथवा 'डाटा' काल के कराल भाल पर जाकर तांडव करने लगा।

यह वह युग था जहाँ मानवीय मेधा मशीनी मेधा के सामने लज्जित-पराजित हुई। उपयोगितावाद के कंधे पर सवार युग ने बाज़ारवाद के दबाव में मानवीय मेधा को अपदस्थ करते हुए कृत्रिम मेधा (आर्टीफ़िशियल इंटेलिजेंस) को 'बाज़ार की रानी' बना डाला। अब युग मनुष्य की स्वाभाविक मेधा को नहीं, मशीन की कृत्रिम मेधा को चमकाने की तरकीबें खोज रहा था। यह युग मनुष्य को मशीन से सीखना सिखा रहा था। अब हम मनुष्य नहीं, मशीनें गढ़ रहे थे। अब मनुष्य मनुष्य को नहीं पढ़ा रहा था, अब मशीनें मनुष्य को सिखा रही थीं और मनुष्य मशीन के रूप में अपने गुरु गढ़ रहा था। यह युग 'मशीन से सीखने' और 'मशीन को सिखाने' का युग था। यह युग 'कृत्रिम मेधा और यन्त्र-शिक्षण' (आर्टिफ़िशियल इंटेलिजेंस और मशीन

लर्निंग) का युग था।

वैश्विकता के उदय के इस काल में 'ज्ञान' हमें सम्मोहित कर रहा था। यह जाने-समझे बिना कि 'ज्ञान' क्या है, वैश्विकता के इस उदय काल को हम 'ज्ञान-समाज का उदय काल' बतला रहे थे। हम एक ऐसे समाज में प्रवेश करने का दावा कर रहे थे जहाँ सबकुछ ज्ञान से संचालित होने वाला था। हम एक ओर सूचना के द्वारा ज्ञान को अपदस्थ कर रहे थे, नक़ली ज्ञान गढ़ रहे थे, बाज़ारवाद और उपयोगितावाद के चक्कर में समाज, परिवार और मानव संवेदना से उत्पन्न संपोषित और मानव संवेदना की पोषक संस्थाओं के विनाश की भूमिका लिख रहे थे और दूसरी तरफ़ ज्ञान-समाज के निर्माण के दावे भी कर रहे थे।

आज, वैश्विकता के उदय के प्रायः तीस वर्षों के बाद, हम उस मक़ाम पर खड़े हैं जहाँ से वैश्विकता के अब तक के हासिल को देख-समझ पा रहे हैं। बेहतर हो कि इस राह पर अंधाधुंध आगे बढ़ने की बजाय हम अपनी इस राह की समीक्षा कर लें, अपना पाथेय चुन लें, अपनी मन्ज़िल की समीक्षा कर लें, ज़रूरत हो तो नए डायवर्जन गढ़ लें, भविष्य के नए और बेहतर मार्ग का निर्माण कर लें अथवा प्रगति और विकास के इस पुराने मार्ग को ही आवश्यकतानुसार तनिक और सुन्दर-सुविधाजनक बना लें।

सच कहें तो यह प्रक्रिया शुरू हो चुकी है। उत्तर-वैश्विकता का काल, वैश्विकता की समीक्षा का काल, शुरू हो चुका है, जिसके प रि णामस्वरूप वैश्विकता की प्रक्रिया में, इसकी प्रवृत्ति में बदलाव दिखने लगे हैं । विज्ञान, तकनीक, औद्योगीकरण और पूँजीवाद के साथ-साथ तथाकथित 'ज्ञान' और सूचना के प्रति अत्यधिक आग्रह तो वैश्विकता की प्रमुख प्रवृत्तियाँ हैं जो उत्तर-वैश्विकता के इस युग में भी विद्यमान हैं ही (यही कारण है कि 'उत्तर-वैश्विकता' को 'वैश्विकता का विस्तार' कहा जा रहा है), अब इस उत्तर-वैश्विक काल में वैश्विकता की इन प्रवृत्तियों में कुछ बदलाव भी दिखने लगे हैं, उदाहरणार्थ, विज्ञान और तकनीक तो इस उत्तर-वैश्विक काल में भी अपनी जगह पर ही हैं किन्तु अब इस विज्ञान और तकनीक में अध्यात्म भी जाकर जुड़ने लगा है; तकनीक, जो अनिवार्यता और संशयहीनता का खेल है, वह आस्था के साथ थोड़ा घालमेल करने लगा है; पूँजीवाद, जो साम्यवाद का विरोधी सिद्धांत है, साम्यवाद की ही भाँति 'मशीन बनाम मनुष्य की गरिमा' के प्रश्न उठाने लगा है; कृत्रिम मेधा और यन्त्र-शिक्षण तो उत्तर-वैश्विकता को भी मुग्ध कर ही रहे हैं किन्तु आज का युग यह सवाल भी उठाने लगा है कि क्या मनुष्य अब मशीन से सिखेगा? अब यह सवाल भी उठने लगे हैं कि क्या यन्त्र और तकनीक मनुष्य और मेधा को अपदस्थ नहीं कर रहे? क्या मशीन की यह मेधा मानव व्यक्तित्व का स्थानापन्न है? क्या जिस 'सूचना' के बूते मशीन मानव-मेधा को चुनौती दे रही है वह 'सूचना' 'ज्ञान' की संज्ञा पाने के योग्य है?... तो ज्ञान क्या है? मनुष्य क्या है? मशीन और मनुष्य में भेद का आधार क्या है? अरस्तू के काल से अब तक तो मनुष्य 'विवेकशील प्राणी' कहकर पारिभाषित किया जाता रहा है, अब यदि मशीन ही 'विवेकशील' हो उठी है तो मनुष्य के पास 'मनुष्य' कहलाने योग्य क्या बचा? 'मनुष्य' की परिभाषा क्या है? क्या मनुष्य मात्र विवेक या/ 'विवेक और बल के आधार पर परिभाषित किया जा सकता है? 'बल'

क्या है? 'विवेक' क्या है? प्रश्न यह भी है कि मशीन ही ज्ञानी हो चुकी तो ऋषित्व और अमरत्व कौन प्राप्त करेगा? यदि यह भौतिक विज्ञान और भौतिक जीवन ही सब कुछ है तो अध्यात्म, परलोक, ईश्वर और अदृश्य के प्रति मनुष्य की उत्कंठा का क्या होगा? ये प्रश्न इतनी आसानी से भुलाए नहीं जा सकते। ये मनुष्य के आंतरिक जीवन से जुड़े प्रश्न हैं। ये आस्था और संवेग के प्रश्न हैं। यदि मानव-व्यक्तित्व के संवेगात्मक पक्ष को इस प्रकार कुचल दिया गया तो मनुष्य और मशीन में क्या अंतर रह जाएगा?

सारांशतः, उत्तर-वैश्विकता का यह युग कुछ नए प्रश्नों के साथ कुछ नई प्रवृतियों की भी रचना कर रहा है। यह काल एक नूतन ज्ञानमीमांसा, एक नूतन तत्त्वमीमांसा, एक नई अर्थव्यवस्था और अर्थनीति, आचरण के नए नियमनों के शास्त्र का रचना-काल है। यह युग एक नई दृष्टि, एक नई वैचारिकता, एक नए दर्शन का काल है।

युग के इस नए दर्शन (लोक-व्यवहार की भाषा में कहें तो 'चंचल') का नाम है– 'फ़्यूज़न'। उत्तर-वैश्विकता का युग 'फ़्यूज़न' का युग है। यह दो अतिवादों के परस्पर अंतर्लीनीकरण का युग है। यह अंतर्लीनीकरण संघर्ष नहीं, समन्वय-प्रधान है।

फ़्यूज़न अथवा मध्यम-मार्ग, अथवा समन्वयवाद की विचारधारा इस युग की कोई नई देन नहीं है। छठी शताब्दी ई. पू. में गौतम बुद्ध ने शाश्वत-उच्छेद, आत्म-अनात्म, कठोरता-इन्द्रियभोगवाद जैसी परस्पर- विरोधी प्रवृत्तियों के बीच मध्यम मार्ग का उपदेश किया। आधुनिकता के युग में जर्मन दार्शनिक इमानुएल काण्ट ने चरम बौद्धिकता और उत्कट इन्द्रियप्रत्यक्षवाद की दो परस्पर-विरोधी विचारधाराओं के बीच समन्वयवाद का दर्शन प्रस्तुत किया। आधुनिकता के युग के अंतिम चरण में कला-संस्कृति के क्षेत्र में फ़्यूज़न का बोलबाला रहा। अब आज के इस उत्तर-वैश्विक युग में मनुष्य पुनः अतिवादों से छुटकारा चाह रहा है। अब सूचना के अतिवाद से त्रस्त और ज्ञान से सम्मोहन से ग्रस्त व्यक्ति मशीन और मनुष्य के बीच संतुलन साधने के लिए छटपटा उठा है। अब ज्ञान के सम्मोहन से आतंकित मनुष्य 'ज्ञान-समाज' में संवेदना के तन्तु पिरोने की जुगत में व्यक्तित्व के बौद्धिक अंश (आई.क्यू.) के साथ व्यक्तित्व के संवेगात्मक अंश (ई.क्यू.) के लिए स्थान खोज रहा है।

आज जिस सांस्कृतिक राष्ट्रवाद का इतना हंगामा है वह सांस्कृतिक राष्ट्रवाद भी 'राष्ट्रवाद' और 'वैश्विकता' की दो परस्पर-विरोधी धारणाओं का विलय है। यूरोप में आधुनिक काल में जिस उपनिवेशवाद की नींव पड़ी थी उसने बहुत जल्द यह बात समझ ली थी कि सांस्कृतिक अधिग्रहण के बिना दीर्घकालिक राजनैतिक अधिग्रहण सम्भव नहीं। राजसत्ता की इस सांस्कृतिक-अधिग्रहणवादी नीति को तनिक तीव्र गति आम आदमी की उस समझ ने भी प्रदान किया जिसके तहत निर्बल सबल के चाल-चलन को, उसकी जीवन शैली को, अपने जीवन में उतार लेना चाहता है। परिणामतः 'आधुनिकता' के नाम पर यूरोपीय, विशेषतः ब्रिटिश, भाषा-भूषा-भजन-भोजन, कहें तो पूरी ब्रिटिश संस्कृति, आधे भूमण्डल पर हावी होती चली गई। आधुनिक युग के अवसान के साथ इस सर्वग्रासी सांस्कृतिक-अधिग्रहणवाद के विरुद्ध मुखर प्रतिक्रियाएँ प्रारम्भ हुईं। उत्तर-आधुनिकता के अवसान काल तक तो इन प्रतिक्रियाओं पर तनिक विराम लग

चुका था किन्तु वैश्विकता के उदय के साथ 'स्थानीय-संस्कृति बनाम वैश्विक-संस्कृति' के विवाद बौद्धिक जगत में बहुत तेज़ी से उभरे। इस सन्दर्भ का मुख्य प्रश्न यह था कि 'वैश्विकता' जिस 'एकरूपता' की माँग कर रही है वह 'एकरूपता' कहीं हमारी सांस्कृतिक विविधताओं को, भूमण्डल के बहुरंगी स्वरूप को, निगल तो नहीं जाएगी? इस काल का बौद्धिक जगत यह भी समझने लगा था कि सांस्कृतिक बहुरंग के राजनैतिक प्रतिफल तो कम हैं किन्तु पर्यावरणीय प्रतिफल उससे कहीं अधिक हैं, अस्तु प्रकृति-संरक्षण और एक 'जीव के रूप में मानव' के परिपोषण के लिए भी स्थानीय-संस्कृति (स्थानीय भाषा, भूषा, भजन, भोजन) के संरक्षण को अपरिहार्य समझा गया। इस प्रकार वैश्विकता के उदय का काल सांस्कृतिक बहुरंगवाद के नवोदय का काल था।

परवर्ती काल में वैश्विकता के नाम पर पसर रहे आर्थिक उपनिवेशवाद को भी विश्व के बौद्धिक जगत ने पहचाना, परिणामतः इस काल में एक नवीन क़िस्म के राष्ट्रवाद का भी उदय हुआ। इस राष्ट्रवाद के लिए राष्ट्र की भौगोलिक सीमाओं की उतनी महत्ता नहीं रही जितनी महत्ता सांस्कृतिक पहचान की रही। आज के भूमण्डल पर 'सांस्कृतिक राष्ट्रवाद' का उदय युग की इन्हीं दो प्रवृत्तियों, 'नव-सांस्कृतिक पुनर्जागरणवाद' और 'नव-राष्ट्रवाद' के सम्मिलन या अंतर्लीनीकरण का परिणाम है।

उत्तर-वैश्विक युग में उभरे इस अंतर्लीनीकरणवाद का प्रभाव इस युग के नारीवाद पर भी देखने को मिल रहा है। वैश्विकता के उदय काल तक नारीवाद पितृसत्ता के ख़िलाफ़ खड़ा एक आंदोलन था जिसके दो आधार-स्तम्भ थे- स्वतन्त्रता और समानता। इस उत्तर-वैश्विक काल में नारीवाद पितृसत्ता के उत्कट विरोध से उबर कर पितृसत्ता की समीक्षा में प्रविष्ट होता है। उत्तर-वैश्विक युग का यह नारीवाद नारीवादी -स्वतन्त्रता और नारीवादी-समानता की अवधारणाओं को भी दरकिनार करता है। इस नव-नारीवाद के अनुसार 'स्वतन्त्रता' एक राजनैतिक अवधारणा है और 'मुक्ति' एक तत्त्वमीमांसीय अवधारणा है। अतः नारीवाद जैसे समाजशास्त्रीय आंदोलन के लिए 'नारी-मुक्ति' और 'स्त्री-स्वातन्त्र्य' नामक इन दोनों अवधारणाओं की कोई आवश्यकता नहीं है।

इसी भाँति नारीवादी सन्दर्भ में 'समानता' की अवधारणा को ख़ारिज करते हुए नव-नारीवाद कहता है कि चूँकि प्रकृति में कहीं कोई समानता नहीं होती अतः समानता की अवधारणा एक अयथार्थ, अप्राकृतिक, कृत्रिम अवधारणा है। उत्तर-वैश्विक युग में उभरे अंतर्लीनीकरण की प्रवृत्ति के अनुरूप यह नवनारीवाद पितृसता और मातृसत्ता के बीच संवाद स्थापित करते हुए परम्परागत नारीवाद के दो स्तम्भों, 'स्वतन्त्रता' और 'समानता' को ख़ारिज करते हुए नारीवाद में दो अन्य संप्रत्ययों को समावेशित करता है। ये दो संप्रत्यय हैं-'स्त्री की निर्णायक भूमिका' और 'महिला सशक्तीकरण'। चूँकि इस नवीन नारीवाद की आधारभूमि 'जैविकता' है, अतः इस नव्य-नारीवाद को 'जैविक नारीवाद' का नाम भी दिया जा सकता है। यह जैविक नारीवाद यह समझता है कि पितृसत्तात्मक समाज ने स्त्री के विरुद्ध सबसे बड़ा षड्यन्त्र यह किया कि उसने स्त्री को 'निर्णय लेने के अधिकार' से वंचित कर दिया। स्त्री को' निर्णय लेने के अधिकार' से वंचित करने के उद्देश्य से पितृसत्ता ने स्त्री की निर्णायक-

क्षमता को बलपूर्वक नष्ट किया। अपने इस उद्देश्य में सफल होने के लिए समाज ने स्त्री के विरुद्ध अनेक षड्यन्त्र रचे, मसलन, उसे शिक्षा के अधिकार से वंचित कर दिया, उसके आर्थिक-स्वावलम्बन को नष्ट किया, उसे घर की चारदिवारी और पर्दे में क़ैद कर दिया, आदि। यह जैविक नारीवाद यह भी समझता है जिस दिन स्त्री को निर्णय लेने के अधिकार मिल जाएँगे और उस अधिकार को सामाजिक स्वीकृति मिल जाएगी, उसी दिन स्त्री अपनी समस्त दुर्दशाओं से मुक्त हो जाएगी। इसीलिए इस जैविक नारीवाद का उद्देश्य 'स्त्री की निर्णायक क्षमता का विकास' है। जैविक नारीवाद चाहता है कि स्त्री की निर्णायक क्षमता में बाधक इन समस्त कारकों को पहचान कर इन्हें नष्ट किया जाए ताकि स्त्री मानसिक और शारीरिक रूप से इतनी सबल-समर्थ हो जाए कि अपने तथा राज और समाज के पक्ष में उचित निर्णय ले सके।

उत्तर-वैश्विकता का यह युग धार्मिक कट्टरपन्थ और धार्मिक उदारतावाद के भी अंतर्लीनीकरण का युग है। इस अंतर्लीनीकरण के प्रयास में आज का युग तर्क, विज्ञान, तकनीक, धर्म और अध्यात्म के बीच तालमेल बैठाने की कवायद में भी फँसा है।

आज का युग साम्यवाद, समाजवाद और पूँजीवाद के अतिवादों के बीच 'नव-पूँजीवाद' या 'नैतिक पूँजीवाद' के नाम पर एक ऐसी अर्थव्यवस्था की तलाश में है जहाँ विकास के उद्देश्य से पूँजी पर आधारित उद्योग-व्यवसाय तो बढ़ते रहें किन्तु इस पूँजीवादी व्यवस्था में मनुष्य की गरिमा सुरक्षित रहे। आज का युग एक ऐसी पूँजीवादी-व्यवस्था चाह रहा है जहाँ पूँजी 'विकास का उपकरण' बन कर रहे, 'मनुष्य के द्वारा मनुष्य के शोषण का उपकरण' बनकर नहीं।

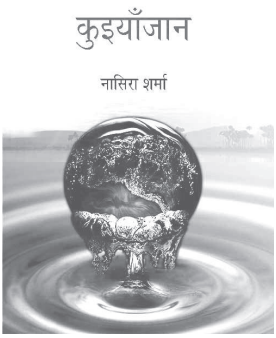
इस प्रकार की अनेक समन्वयवादी प्रवृत्तियाँ हमें आज के युग में देखने को मिल रही हैं। उन सभी प्रवृत्तियों की चर्चा यहाँ इस आलेख में सम्भव नहीं। संक्षेप में अभी मात्र इतना ही कि उत्तर-वैश्विकता ने समय के संकट से जूझने के लिए 'अंतर्लीनीकरण' की एक दृष्टि अपने भीतर विक सित की है। परस्पर-विरोधी ध्रुवों या विविध-समानधर्मी विचारधाराओं/प्रवृत्तियों का यह अंतर्लीनीकरण ही इस युग की सर्वसामान्य प्रवृत्ति है, यही इस युग के संकट से त्राण का उपकरण भी है और यही इस समय से संवाद का साधन भी है। आज के समय में जितने भी संकटों से हम जूझ रहे हैं, उन समस्त संकटों का एक व्यापक, सर्वस्वीकृत-समाधान भी अंतर्लीनीकरण ही है। चूँकि 'अंतर्लीनीकरण' की यह दृष्टि युग ने अपने भीतर से विकसित की है अतः व्यापक-स्तर पर अंतर्लीनीकरण स्वीकृत भी है, स्वीकार्य भी। हमें यह याद रखना होगा कि प्रकृति में समानता नहीं, विविधता है, अतः विविधता रहेगी, मत-वैभिन्य भी रहेंगे। हमें याद रखना होगा कि प्रकृति इसीलिए चिरंजीवी है कि यह अपनी समस्त विविधताओं को सामंजित करना जानती है। इस 'सामंजन' का उपकरण 'विविधताओं का अंतर्लीनीकरण' है। यदि मानव-प्रजाति चिरंजीवी होना चाहती है तो उसे भी प्रकृति से सामंजन के गुर सीखने होंगे, 'विविधताओं का अंतर्लीनीकरण के उपकरण का प्रयोग' सीखना होगा। साथ ही यह भी समझना होगा कि अंतर्लीनीकरण सर्वग्रासी नहीं, सर्वग्राही है। हम यदि इस भूमण्डल पर अपने लिए स्थान चाहते हैं तो हमें दूसरों के लिए स्थान बनाना भी सीखना पड़ेगा। ❑



श्रुति

'कुइयाँजान' उपन्यास में जल संवेदना

साहित्य की उपयोगिता सामाजिक सरोकारों से तय होती है। यह समाज तय करता है कि अमुक विषय सामाजिक महत्व का है या नहीं। जिन विषयों को मुख्यधारा के लिए महत्वपूर्ण नहीं समझा जाता उन्हें हाशिए पर डाल दिया जाता है। उन पर चर्चाएँ नहीं होतीं, गोष्ठियाँ भी नहीं होती हैं लेकिन वो प्रच्छन्न रूप से सामाजिक परिस्थितियों को प्रभावित करती रहती हैं। पिछले कुछ वर्षों में हिन्दी साहित्य ने बदलती सामाजिक परिस्थितियों की डोर को बहुत मज़बूती से पकड़ा है। अब उन विषयों पर भी लिखा-पढ़ा जाने लगा है, जिन्हें साहित्य के लिए अनुपयुक्त समझकर उनकी अनदेखी की जाती थी।



भूमंडलीकरण के प्रभाव के रूप में साहित्य में विभिन्न विमर्शों पर खूब चर्चाएँ हुई हैं। विमर्शों पर बातचीत के लिए भी जीवन के आधार का ज्ञान आवश्यक है। जीवन का आधार तो वह पंचमहाभूत है, जिससे इस जीवन की निर्मिति हुई है। इन विषयों पर प्रभावकारी, व्यवहारिक क़दम उठाने की आवश्यकता न तो सरकार को हुई और न ही समाज को।

कालांतर में कई सरकारी नीतियाँ आईं एवं साहित्य की विभिन्न विधाओं में भी वस्तुस्थिति को गंभीरता से लिया गया। उपन्यास ने अपनी कथाओं में पानी एवं पर्यावरण के प्रश्न को स्पेस दिया। इस सन्दर्भ में अब विभिन्न एंगल से सोचा जाने लगा। 'कुइयाँजान' इसी तरह का एक उपन्यास है। उपन्यास ने न सिर्फ़ अपने एंगल को विस्तृत रखा है अपितु समस्या का समाधान भी बताया है। अगर मन्दिर-मस्जिद बासी पड़े हैं तो इसका कारण धार्मिक उन्माद नहीं है बल्कि पानी का अकाल है। पानी

सम्पर्क : *ई-मेल : shruti.jha879@gmail.com*

का अकाल क्यों है, इसी बिन्दु पर प्रसिद्ध कथाकार नासिरा शर्मा ने अपने उपन्यास को केन्द्रित किया है। तालाब और कुएँ पाट दिए गए। पानी के स्रोतों को गाद से भर दिया गया। स्थिति यह आ गई कि दैनिक चर्या के लिए भी पानी की क़िल्लत होने लगी।

पंचतत्त्वों से मिलकर ही इस काया का निर्माण हुआ है। ऐसी मान्यता है कि मृत्यु के उपरांत यह शरीर पुनः पंचतत्त्व में मिल जाता है। इसी क्रम में अंतिम संस्कार में नहाना एक महत्वपूर्ण क्रिया माना गया है लेकिन यह क्रिया तभी पूर्ण मानी जाएगी जब पानी की उपलब्धता हो। 'कुइयाँजान' उपन्यास में इस मार्मिक क्षण को बहुत संजीदगी से दर्शाया गया है। कहानी गली बताशेवाली से शुरू होती है। मौलाना साहब के इंतक़ाल के बाद आख़िरी 'ग़ुस्ले मैय्यत' के लिए पाक पानी की आवश्यकता थी। ऐसे में पानी की क़िल्लत थी, जो पानी बचा था वह पाक नहीं था और ग़ुस्ले मैय्यत के लिए तो 'घड़ों' पानी की ज़रूरत थी। ऐसे में बदलू जो न जाने कहाँ से मौलाना की दुनिया में आ गया था, हलक़ान हुए जा रहा था! वहीं दूसरी तरफ़ गली में 'शिव' जी भी बिना नहाए, खाए-पिए ध्यान लगाए बैठे थे! नासिरा शर्मा कहती भी हैं, "मोहल्ले के कुएँ बरसों पहले कूड़े से पाट दिए गए थे। एक-दो घरों में हैंडपंप थे, जो ख़राब पड़े थे। शिव मन्दिर के पुजारी भी बिना नहाए परेशान बैठे थे। उन्होंने न मन्दिर धोया था न भगवान् को भोग लगाया था उनके सारे गगरे-लोटे ख़ाली लुढ़के पड़े थे। नल की टोंटी पर कई बार कौआ पानी की तलाश में आ-आकर बैठ-उड़ चुका था। पता नहीं किस आशा में पण्डितजी बार-बार नल खोलते फिर बन्द कर बड़बड़ा उठते 'पग-पग रोटी, डग-डग नीर.... मगर अब... ई शहर का कईसा हाल बनाए दिए हो भगवान, न पानी है, न रोटी है!'

अंततः खूब मेहनत के बाद बदलू ने पानी का इंतज़ाम कर लिया। जो सहज उपलब्ध लेकिन उसकी क़ीमत न समझी जाए तो वह भी विलुप्त होने लगता है। पानी की भी प्रवृत्ति ऐसी ही सहज है। वह यह नहीं सोचता कि उसे तो जाकर सागर से मिलना है, कुछ बड़ा कार्य करना है, उसके मार्ग में चाहे छोटे खड्डे ही क्यों न आएँ, पहले उन्हें भरता है फिर आगे बढ़ता है। यह तो मनुष्य है जिसने उसके मार्ग में रोड़े अटकाए। उसके मार्ग का अधिग्रहण कर लिया! हमारे पुरखे यह जानते थे कि नदियों की अपनी शैली होती है जिससे वे सम्पूर्ण सभ्यता को सींचती जाती हैं। पुरखों ने संस्कृति का विकास ही कुछ इस तरह किया था कि आधारभूत आवश्यकताओं का अभाव न हो। प्रकृति जहाँ जितना बरस पाई, पुरखों ने उसे मुट्ठी बन्द कर समेटा, पुनश्च हाथ खोलकर धन्यवाद भी दिया! इसका नायाब उदाहरण राजस्थान है। राजस्थान के लोग जानते थे कि प्रकृति ने वहाँ आते तक थोड़ी कृपणता दिखाई है। पानी का प्रसाद उन्हें थोड़ा कम मिला है परन्तु जितना मिला है उसे टाँकों में भरकर ताला लगा दिया! यहाँ भाव का अभाव न था, पानी का अभाव था। इसी अभाव को दूर करने के लिए मरुदेश के लोगों ने रेत में भी मीठा रस ढूँढ निकाला। कुईं, कुंड, टाँके, बावड़ियाँ इसके उदाहरण है। जहाँ जैसी सुविधा हो बस अमृतरूपी जल को भविष्य के लिए संग्रह कर लेना है। इसी क्रम में टाँका भी है। टाँकों में घर की छत से

वर्षा का पानी एकत्र किया जाता है। अनुपम मिश्र अपनी पुस्तक 'राजस्थान की रजत बून्दें' में कहते हैं, "टाँका किसी कमरे, बैठक या आँगन के नीचे रहता है। यह भी पक्की तरह से लकड़ी के एक साफ़-सुथरे ढक्कन से ढँका रहता है। मोखी, जिसे खोल कर बाल्टी से पानी निकाला जाता है। टाँके का पानी बरस भर पीने और रसोई के काम में लिया जाता है। इसकी शुद्धता बनाए रखने के लिए इन छतों पर भी चप्पल-जूते पहन कर नहीं जाते।"

पुरखों की दी हुई इसी विरासत ने उस दिन पानी की खोज में हलक़ान हुए बदलू की मदद की थी ! मौलाना साहब के 'ग़ुस्ले मैय्यत' में खुरशीदआरा के घर कई पीढ़ियों पहले बनाई हुई पानी के टाँके ने बड़ी भूमिका निभाई। बिजली नहीं, सप्लाई नहीं तो नलके बन्द हो जाते हैं पर लेखिका कहती हैं, "बरसों पहले खुरशीदआरा की सास ने सूखे कुएँ को आधा पटवाकर टँकी बनवा ली थी जिसमें वह बरसात का पानी जमा करती थीं, जो घर में शादी-ब्याह के समय मोटे काम-काज में बहुत काम आता था। जब से नलों में पानी आने का समय तय हो गया था तब से घर की सफ़ाई, कपड़े की धुलाई में भी इसी हौज़ का पानी ज़रूरत पड़ने पर काम आता था।..... समीना की बात मान अगर मैं इसे बराबर करवा देती तो ऐसी मुश्किल की घड़ी में आज मरने वाले, ख़ुदा उन्हें जन्नत में जगह दे, के काम न आती। सच कहा है किसी ने–बुजुर्गों के हर काम में कोई दूरंदेशी ज़रूर रहती थी।"

समाज दूरदर्शी था, 'कुइयाँजान' उपन्यास में इस विषय को गंभीरता से उठाया गया है कि महज़ कुछ सेंटीमीटर वर्षा वाले क्षेत्र, राजस्थान के पुरखों ने उजाड़ मरुप्रदेश को भी इंद्रधनुषी बना दिया।

भारत के पूर्वी भाग से उड़कर आने वाली हवा अपनी सारी नमी उत्तर-पूर्वी भाग में ही उड़ेल आती है। पश्चिमी भाग में पहुँचकर वह इस अपराधबोध से ग्रसित हो जाती है कि 'देखो मैंने तो तुम्हारे लिए कुछ नहीं बचाया। पश्चाताप के आँसू गिराकर वह विलीन हो जाती है। तब भी वहाँ का उदार समाज उस आँसू को भी रेत में छिपाकर रख लेता है। वह धन्यवाद देता है उस बादल को जो नमी उड़ाकर यहाँ तक पहुँचाता है। वहाँ बादल के हज़ारों नाम मिलते हैं। राजस्थानी समाज ने बादलों के कई नाम रखे हैं। जलपुरुष, समाजसेवी अनुपम मिश्र 'राजस्थान की रजत बून्दें' पुस्तक में कहते हैं- "बादल यहाँ सबसे कम आते हैं पर बादलों के नाम यहाँ सबसे ज़्यादा निकलें तो कोई अचरज नहीं। खड़ी बोली और बोली में ब और व के अंतर से, पुल्लिंग, स्त्रीलिंग के अंतर से बादल का बादल और बादली, बादलो बादली है, संस्कृत से बरसे जलहर, जीमूत, जलधर, जलवाह, ज ल धरण, जलद, घटा, क्षर (जल्दी नष्ट हो जाते है) सारंग, व्योम, व्योम च र , मेघ, मेघाडंबर, मेघमाला, मुदिर, महीमंडल जैसे नाम भी हैं पर बोली में तो बादल के नामों की जैसी घटा छा जा ती है : भरणनद, पाथोक, धरमंडल, दादर , डंबर, दलबादल, घन, घणमंड, जलजा ल , काकलीकांठल, कालाहरण, कारा य ण , कंद, हब्र, मैमट, मेघजल, मेघा ण , म हाघण, रामइयो और सेहर। बादल कम पड़ जाएँ, इतने नाम हैं, यहाँ बादलों के।"

नासिरा शर्मा अपनी पुस्तक में चर्चा करते हुए कहती हैं कि यह वहाँ के लोगें की खोज यानी युक्ति और उपाय है कि 14 सेमी. से भी कम वर्षा वाले क्षेत्र में वे पानी का प्रबन्धन खूबसूरती से कर लेते हैं। रेत के समाज ने वर्षा को सेमी. और मीटर में नहीं देखा बल्कि बूँदों में देखा। इन छोटी-छोटी बून्दों को रजततुल्य समझकर पानी के प्रबन्धन की भव्य परम्परा खड़ी कर दी। जिसकी चमक इतिहास से लेकर वर्तमान तक फैली है तथा भविष्योन्मुखी है। पानी सहेजना पुण्य का काम है। ऐसा मानकर भारत के पश्चिमी इलाक़े का मरुक्षेत्र पानी का काम करने वाले हर व्यक्ति को सम्मान देते हैं। प्रकृति ने पानी का अभाव भले दिया हो परन्तु गुण का अभाव नहीं दिया। राजस्थान में कुछ ऐसी भी जातियाँ हैं जो मिट्टी को सूँघकर यह बता देती हैं कि यहाँ के पानी का स्वभाव कैसा है। पानी खारा है या मीठा। इन्हें 'जलसूँघा' कहा जाता है। जलसूँघा, मिट्टी सूँघ कर बता देते हैं कि यहाँ 'कुईं' बन सकती है या नहीं या फिर खड़ियों की पट्टी ने कितनी दूरी पर जाकर पानी को खारा बनाया है। 'कुईं' रेत में छुपे पानी को चुराने का एक अच्छा माध्यम है। 'कुइयाँजान' उपन्यास में इसका वर्णन है- "कुआँ पुल्लिंग है, 'कुईं' स्त्रीलिंग। 'कुईं' केवल अपने व्यास में छोटी होती है मगर गहराई में नहीं। हाँ, इनकी गहराई कम और ज़्यादा अलग-अलग स्थानों पर भिन्न होती है। 'कुईं' एक अर्थ में कुएँ से बिल्कुल अलग है। कुआँ भूजल तक पहुँचने या पाने के लिए बनता है पर कुईं भूजल से ठीक वैसे नहीं जुड़ती है जैसे कुआँ, बल्कि कुईं वर्षा के जल को बड़े विचित्र ढंग से समेटती और सँजोती है। तब भी जब वर्षा ही नहीं होती। यानी कुईं में न तो सतह पर बहने वाला पानी है न भूजल है। यह तो 'नेति-नेति' जैसा कुछ पेचीदा मसला है।"

मसला पेचीदा तब तक ही रहता है जब तक मन में संकल्प न हो। अगर रेत से पानी को निचोड़ा जा सकता है तो जहाँ कई सौ सेमी. वर्षा होती है वहाँ पानी का उचित प्रबन्धन क्यों नहीं हो सकता। बिहार, कोंकण, चेरापूँजी नदियों के किनारे बसा क्षेत्र पानी के मामले में अत्यंत समृद्ध है परन्तु यह क्षेत्र पानी की गंभीर समस्या से जूझ रहा है क्योंकि इन्होंने पानी के मामले में स्वयं को कसा नहीं नया कुछ सीख नहीं पाए और पुराने ज्ञान को भूला दिया। बिहार, नदियों के बीच बसा राज्य है। बिहार में बाढ़ आती नहीं, बल्कि यह बाढ़ के रास्ते में है। हिमालय से निकलने वाली अल्हड़ नदी कोसी यहाँ की जलापूर्ति का प्रमुख माध्यम है। कहा जाता है कि कोसी सबसे ज़्यादा रास्ता बदलने वाली नदी है।

कोसी हिमालय के नेपाल के हिस्से से निकलती है। इसी क्षेत्र में हिमालय की ऊँची चोटियाँ भी हैं। जब सीधे वेग से नदियाँ नीचे उतरती हैं तो अपने साथ ढेर सारा गाद भी लाती हैं। पुराना गाद हटाते नहीं, नया फिर जमा हो जाता है, जब यहीं आकर नदी अपना रास्ता माँगती है तो हम उसे 'बाढ़' कह देते हैं। लगातार कुल्हाड़ी चलाई पेड़ों पर, खूब घर बनाए, खूब बाँध बनाए। नतीजन महाप्रलय।

बिहार में एक लोक कहावत प्रचलित है 'चार कोसी झाड़ी'। हिमालय की तराई वाले क्षेत्र में चार कोस तक झाड़ी छोड़ दी जाती थी ताकि जब पानी वेग से गिरे

तो पानी इसमें फँसकर रह जाए। यह स्वयंसिद्ध तटबन्ध था जो बाढ़ की मारक क्षमता को कम करने के लिए उपयोगी था।

शनैः शनैः, झाड़ी चली गई, पेड़ भी चले गए। उसके साथ ही चला गया हमारा विचार। 'विचार' शब्द विकास से पहले आया हुआ जान पड़ता है क्योंकि पहले विकास के लिए विचार आया फिर विचारों ने विकास के मानदण्ड को ही बदल दिया। अनुपम मिश्र 'अच्छे विचारों का अकाल' पुस्तक में कहते हैं, "विकास' शब्द ने माथा बदला और फिर उसने समाज के अनगिनत अंगों की थिरकन को थामा। नए माथे ने देश के विकास का जो नया नक्शा बनाया, उसमें ऐसे ज़्यादातर इलाक़े 'पिछड़े' शब्द के रंग से ऐसे रंगे गए, जो कई पंचवर्षीय योजनाओं के झाड़ू-पोछे से भी हल्के नहीं पड़ पा रहे। अब हम यह भूल भी चुके हैं कि ऐसे ही पिछड़े इलाक़ों की सम्पन्नता से, वनों से, खनिजों, लौह-अयस्क से देश के अगुआ मान लिए गए हिस्से कुछ टिके से दिखते हैं।"

थोड़ा झाड़ू-पोछा करके विचारों को साफ़ करना होगा। यही एक मार्ग है, पानी और पर्यावरण के संवर्द्धन का। हमारा यह विचार ही है कि जो गहरे तक हमारे संस्कारों में समाया है कि अंतिम संस्कार नदियों के तट पर ही होना चाहिए। कई बार शव कच्चे ही रह जाते हैं और लोग उन्हें नदियों में बहा देते हैं। सरकार ने कई जगहों पर विद्युत शवदाह गृह भी बनाए हैं। परन्तु काम की प्रतीक्षा में शवदाह गृह भी दम तोड़ जाते हैं वर्ष 1985-86 में विश्वास बोर्ड बनाकर लोगों को विश्वास में लेने का प्रयास किया गया। लोगों से अपील की गई कि मुक्ति तब भी मिलेगी जब विद्युत से शवदाह होगा। स्वयं मुक्त हुए या नहीं, यह तो पता चला नहीं पर बेचारी नदियाँ बेमौत मर रहीं हैं। इन्हीं मरती नदियों का पानी पीकर समाज कई अबूझ बीमारियों का शिकार हुआ जा रहा है। उपन्यास में इसकी चर्चा भी है- "आज विश्व में आँकड़ों से ज्ञात होता है कि लगभग एक अरब से ज़्यादा लोगों को साफ़ पानी पीने के लिए उपलब्ध नहीं है। दो अरब लोगों को नहाने-धोने के लिए पानी नहीं मिल पाता, जिससे लोग अनेक तरह के रोगों का शिकार हो रहे हैं। मृत्यु दर दिन-प्रतिदिन बढ़ती चली जा रही है। भारत में गाँव, क़स्बों, शहरों में लोग कुएँ, तालाबों और नदियों से पानी लेते हैं जो अधिकतर गंदा और कीटाणुयुक्त होता है। उसमें प्राकृतिक रूप से पाए जाने वाले संखिया की मिलावट होती है। पानी के कारण सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक तनाव पनपते हैं- भारत और पाकिस्तान, भारत और बांग्लादेश, भारत और नेपाल, सीरिया और तुर्की के बीच स्वयं भारत में कर्नाटक और तमिलनाडु के बीच कावेरी नदी को लेकर तनाव की स्थिति पनप चुकी है।"

पानी की धारा अनवरत बहती रहे, इसके लिए विचारों की धारा में परिवर्तन की आवश्यकता है क्योंकि पानी और पर्यावरण के परिवर्तन से समाज या कहें कि धरती कितनी देर टिकी रह पाएगी, यह प्रश्न बड़ा है। रहीम कह गए हैं- ❑

'रहिमन पानी राखिए, बिन पानी सब सून
पानी गए न ऊबरे, मोती मानुष चून।'

लेख



डी. एम. मिश्र

हिन्दी ग़ज़ल

विकास यात्रा में, उर्दू का साम्य-वैषम्य

हिन्दी ग़ज़ल की विकास यात्रा पर बात करें, उससे पहले इस ऐतिहासिक परिवेश को भी जान लेना ज़रूरी है। अमीर खुसरो की इस ग़ज़ल पर ध्यान दें-...

'ज़े-हाल-ए-मिस्कीं मकुन तग़ाफ़ुल दुराय नैनाँ बनाए बतियाँ
कि ताब-ए-हिज्राँ नदारम ऐ जाँ न लेहू काहे लगाए छतियाँ
शबान-ए-हिज्राँ दराज़ चूँ ज़ुल्फ़ ओ रोज़-ए वसलत चूँ उम्र-ए-कोताह
सखी पिया को जो मैं न देखूँ तो कैसे काटूँ अँधेरी रतियाँ'।

यानी 13वीं-14वीं शताब्दी में अमीर खुसरो ने ही एक ऐसी भाषा से ग़ज़ल का आग़ाज़ किया था, जो क्लिष्ट फ़ारसी और हिन्दी की खाँटी लोकभाषा की ज़ुबान में तराशी गई थी। इसके पीछे अमीर ख़ुसरो की कोई सोच ज़रूर रही होगी। यह अमर ग़ज़ल, हिन्दू और मुस्लिम को भाषाई स्तर पर और क़रीब लाने की एक कोशिश रही होगी। इस ग़ज़ल को लिखकर अमीर खुसरो ने संदेश दिया था कि 'हिन्दुस्तानी ग़ज़ल' ऐसी होनी चाहिए। इसे गंगा-जमुनी तहज़ीब की एक बेशक़ीमती मिसाल कहें तो ज़्यादा उपयुक्त होगा। 1985 में गुलज़ार ने अपनी फ़िल्म 'ग़ुलामी' में भी इस ग़ज़ल को पेश किया था। यह भी सही है कि उस समय हमारी भाषा संस्कृत थी, और लिपि देवनागरी।

विदेशी आक्रांता ख़ास-तौर से मुग़ल अपने साथ अपनी भाषा भी लाए थे। 1526 में स्थापित मुग़ल साम्राज्य लगभग 1857 तक रहा। चूँकि मुग़लों को यहाँ लम्बे समय तक राज करना था और यहाँ की अवाम को सम्वाद हेतु अपनी भाषा सिखानी थी और उनकी भाषा सीखनी थी, इसलिए संस्कृत और फ़ारसी के आसान शब्दों का आपस में खूब विलय हुआ और दो नई भाषाओं का जन्म हो गया। देवनागरी लिपि में हिन्दी बन गई और फ़ारसी लिपि में उर्दू। अकबर, जहाँगीर और शाहजहाँ के कार्यकाल में ये दोनों भाषाएँ खूब फूलीं-फलीं। इतना ही नहीं मुग़लकाल में अधिकांश प्रजा उर्दू सीखने को लालायित हो गई और उर्दू समृद्ध होने लगी। साथ-साथ पूर्व-प्रचलित हिन्दी भी चलती रही लेकिन उसमें

सम्पर्क : *ई-मेल : dmmishra28@gmail.com*

फ़ारसी शब्दों का समावेश भी होने लगा। इस प्रकार से यहाँ एक खिचड़ी भाषा तैयार हो गई, जिसे कुछ लोगों ने बोलचाल की भाषा में 'हिन्दुस्तानी ज़ुबान' कहना शुरू कर दिया। लिखने की लिपि अलग-अलग ज़रूर रही लेकिन बोली-बानी में काफ़ी साम्यता दिखने लगी।

औरंगज़ेब ने भाषा के स्तर पर कुछ हद तक कट्टरता बरतनी शुरू कर दी थी जबकि उसका बड़ा भाई दाराशिकोह संस्कृत का बड़ा विद्वान था। औरंगज़ेब ने उर्दू को प्राथमिकता प्रदान की इस व्यवहार से हिन्दी वालों के मन में काफ़ी खटास आ गई। नतीजतन वीरगाथा काल, भक्तिकाल, रीतिकाल में जो काम हिन्दी में हुआ था, उसे आगे बढ़ाना ही उचित समझा गया। धीरे-धीरे हिन्दी भारतेंदु युग से होती हुई खड़ी बोली में प्रवेश कर गई। वह ब्रिटिश शासन काल था। अब हिन्दी स्वतन्त्र रूप से फलने-फूलने लगी। छायावाद, रहस्यवाद, आधुनिक कविता, छन्द-मुक्त कविता आदि कमोबेश इसी समय की देन हैं। यहाँ पहुँच कर, हिन्दी पूरी तरह से देवनागरी लिपि और संस्कृतनिष्ठ शब्दों के दम पर आत्मनिर्भर हो गई थी। दूसरी तरफ़ उर्दू वाले फ़ारसी लिपि में ग़ज़ल और नज़्म लिखते रहे। वे भी हिन्दी से मुक्त रहे लेकिन यहाँ एक बात और समझना ज़रूरी है। चूँकि उस समय प्राइमरी स्कूलों में हिन्दी और उर्दू साथ-साथ पढ़ाई जाती थी, इसलिए फिर दोनों भाषाओं में साम्यता दिखने लगी। लोग उर्दू में पारंगत होने लगे। हिन्दू भी उर्दू में शायरी करने लगे परन्तु फिर वही विडम्बना सामने आने लगी। मुस्लिम शायर उर्दू शायरी पर एकाधिपत्य जताते थे। इसका ज़िक्र पं. रामनरेश त्रिपाठी की पुस्तक 'कविता कौमुदी', भाग-4 में देखा जा सकता है। इस पुस्तक की प्रस्तावना में कविता के मर्मज्ञ पं. अमरनाथ झा लिखते हैं, "ऐतिहासिक और शब्द-वैज्ञानिक दृष्टि से शब्द चाहे कुछ भी हो, पर हिन्दी और उर्दू दो भिन्न भाषाएँ हैं। उर्दू-काव्य का समस्त वातावरण विदेशी है। हिन्दू कवि/शायर उदार रहा है। वह मज़ार और क़ब्र का ज़िक्र करता है। वह ईश्वर की जगह ख़ुदा लिखता है। वह अपनी शायरी में भूल से भी सावित्री और सत्यवान, नल और दमयन्ती का ज़िक्र नहीं लाता लेकिन शीरी और फ़रहाद, यूसुफ़ और ज़ुलेख़ा, लैला और मजनूँ का नाम लेने में नहीं झिझकता। यहाँ तक कि वह अपने नाम के साथ मुस्लिम संस्कृति का उपनाम भी लगाने लगा। जैसे पं. बृज नारायण उर्फ़ 'चकबस्त', रघुपति सहाय उर्फ़ 'फ़िराक़ गोरखपुरी', पं. रामप्रसाद उर्फ़ 'बिस्मिल।' यहाँ यह भी ग़ौर करने वाली बात है कि किसी मुस्लिम शायर ने अपने नाम के साथ हिन्दी में उपनाम नहीं रखा। 'कविता कौमुदी' में एक और तंज़ किया अमरनाथ झा ने, कहा कि "तीन सौ वर्षों की शायरी के इतिहास में सत्ताइस बड़े शायरों का अध्ययन किया गया है। वे नाम हैं- वली, आबरू, एकरंग, आरज़ू, फ़ुगाँ, सौदा, सोज़, दर्द, मीर, जुरअत, हसन, इन्शा, मसहफ़ी, नासिख़, आतिश, मोमिन, ज़ौक़, ग़ालिब, अमीर, अनीस, दबीर, दाग़, आसी, हाली, अकबर, इक़बाल, चकबस्त। इसमें अंतिम एक नाम हिन्दू का है। इस प्रकार हिन्दू शायरों की उपेक्षा की गई। ऐसे में ग़ज़ल या शायरी की कोई 'मुश्तर्का ज़ुबान' बन ही नहीं पाई और हिन्दी-उर्दू के बीच वैषम्य देखने को मिलता रहा।"

अब हम अपना वर्तमान समय खँगालने की कोशिश करते हैं। यानी साहित्य में आज हिन्दी-उर्दू के बीच कैसा रिश्ता है? वही पुराना हाल देखने में अभी भी आ रहा है। हिन्दी वाले कविता पर ज़ोर दे रहे हैं तो दूसरी तरफ़ उर्दू

वाले ग़ज़ल और नज़्म पर। इधर कुछ कवि ऐसे ज़रूर हुए हैं जो ग़ज़ल और नज़्म लिखने में भी माहिर हुए। यहाँ यह जानना ज़रूरी है कि हिन्दी भाषा-भाषियों को फिर से ग़ज़ल और नज़्म लिखने की ज़रूरत ही क्यों पड़ी? वास्तव में बाज़ारवाद के इस युग में उन्हें पता है कि हिन्दी कविताओं के पाठक बहुत कम हो गए हैं। बहुधा देखा यह जा रहा है कि हिन्दी कविताओं में वैचारिकी बहुत अधिक है। रवानी और लयात्मकता अपेक्षाकृत कम है। हिन्दी की लम्बी और छन्द-मुक्त कविताएँ दिनोंदिन उबाऊ होती जा रही हैं। ऐसी कविताओं को पढ़ने और सुनने का समय ही शायद लोगों के पास नहीं। लोग कम समय में ज़्यादा पाना चाहते हैं। इससे इतर ग़ज़ल जो जनमानस में सर्वाधिक लोकप्रिय काव्य विधा बनकर उभरी है, उसमें ग़ज़ब की सम्प्रेषणीयता है। आज सबसे ज़्यादा लिखी, पढ़ी और सुनी जाने वाली काव्य-विधा ग़ज़ल बन गई है। वजह यह है कि ग़ज़ल के एक शेर में बहुत कुछ कहने की क्षमता होती है। यानी 'गागर में सागर' भरने की कला ग़ज़ल के पास है।

हिन्दी ग़ज़ल की नींव तो कबीर ने ही डाल दी थी लेकिन एक लम्बे समय तक कवियों ने उसमें कोई रुचि नहीं दिखाई। आधुनिक युग के कुछ कवियों जैसे निराला, त्रिलोचन, शमशेर ने हिन्दी में फिर से ग़ज़ल की शुरुआत की पर, उस दौर में ज़्यादा ग़ज़लें प्रकाश में नहीं आईं। वास्तव में दुष्यन्त कुमार ने अपनी ग़ज़ल की किताब 'साए में धूप' से हिन्दी ग़ज़ल को एक नई पहचान दी। आज आलम यह है कि जिसे देखिए वही ख़ुद के ग़ज़लकार होने का दावा कर रहा है। सोशल मीडिया पर ग़ज़लकारों की बाढ़-सी आ गई लेकिन वास्त व में ग़ज़ल जितनी आसान दिखती है, उतनी होती नहीं। ग़ज़ल का अलग व्याकरण और अंदाज़ेबयाँ है, जिसे सीखना और पढ़ना पड़ता है। ग़ज़ल को साध पाना एक मुश्किल काम है। यह हुनर सबको नहीं आता। फिर भी ग़ज़ल की चमक को देखते हुए जिसे देखिए वही ग़ज़ल लिखने लगा है। मोटे तौर पर आँकलन है कि पाँच हज़ार से अधिक लोग ठीक-ठाक ग़ज़लें कह रहे हैं। ग़ज़लें पत्र-पत्रिकाओं में भी ख़ूब छप रही हैं। इस समय सबसे ज़्यादा ग़ज़ल के ही विशेषांक छप रहे हैं। इसलिए ग़ज़ल के प्रति कवियों / पाठकों /श्रोताओं का ज़बरदस्त रुझान देखने को मिल रहा है।

देखने में यह भी आ रहा है कि इस समय तीन प्रकार की ग़ज़लें लिखी जा रही हैं– मंचीय ग़ज़लें, पारम्परिक ग़ज़लें और जनवादी ग़ज़लें। कभी मंचों पर काव्य-पाठ का उच्च स्तर हुआ करता था। जब कवि सम्मेलन के मंचों पर मैथिलीशरण गुप्त, रामधारी सिंह दिनकर, महादेवी वर्मा, श्याम नारायण पाण्डेय, बच्चन जैसे कवि काव्य-पाठ करते थे तब कवि सम्मेलन और मुशायरे अलग-अलग हुआ करते थे। अब अमूमन मुशायरे और कवि-सम्मेलन एक साथ होने लगे। उर्दू शायर जब आमफ़हम ज़ुबान में मंचों पर शायरी सुनाने लगे तो अवाम उसमें ज़्यादा रुचि लेने लगी। हिन्दी और उर्दू दोनों के जानकार ऐसी शायरी के दीवाने होने लगे। यहाँ तक कि मुशायरों में धाक जमाने वाले इन शायरों को मुँहमाँगी फ़ीस भी मिलने लगी। इस प्रकार तमाम हिन्दी कवि, कविता छोड़कर ग़ज़ल कहने लगे और मुशायरों में भाग लेने लगे। बलवीर सिंह रंग, रामावतार त्यागी, दुष्यन्त कुमार, नीरज, कुँवर बेचैन जैसे हिन्दी के कवि और मजरूह, ख़ुमार, अजमल, बशीर बद्र, वसीम बरेलवी, निदा फ़ाज़ली, मुनव्वर राणा जैसे तमाम उर्दू के शायर इसी

राह के राही हुए। शलभ श्रीराम सिंह, अदम गोंडवी की ग़ज़लों ने भी मंचों पर ख़ूब धूम मचा रखी थी।

अदम गोंडवी ग़ज़ल को इस दिशा में लाकर उसे एक नई धरती और नए आकाश की नई दुनिया में लाते हैं जहाँ नए जन-सरोकारों का एक खुला आकाश मिलता है। ख़ुशी की बात यह है कि जीवन के इस नए क्षेत्र की संस्कृति और जीवन-मूल्यों से सम्बद्ध अनुभवों को ग़ज़ल में लाने वाले कई ग़ज़लकार भी सामने आते हैं। इनमें कमल किशोर श्रमिक, रामकुमार कृषक, बल्ली सिंह चीमा, महेश कटारे सुगम, राम मेश्राम, नूर मुहम्मद 'नूर' आदि प्रमुखतः ग़ज़ल को इस नई दिशा में ले जा रहे हैं।

कुछ व्यावहारिक समस्याएँ भी हैं जो दोनों भाषाओं के व्याकरण, भाषिक संरचना, उच्चारण भिन्नता व लिपि के कारण उत्पन्न होती हैं। इसीलिए कुछ लोग कहते हैं कि हिन्दी और उर्दू ग़ज़ल में संस्कारगत भिन्नता है जिससे इंकार नहीं किया जा सकता क्योंकि उर्दू में बहुत कुछ ऐसा है जो हिन्दी में है ही नहीं। मसलन पहले नुक़्ता ही ले लीजिए। उर्दू में नुक़्ता बहुत महत्वपूर्ण है। हिन्दी में नुक़्ता होता नहीं। नुक़्ता का शाब्दिक अर्थ 'बिन्दु' होता है। बिन्दु जो में, यहीं, कहीं आदि में लगाया जाता है। जिन दिनों हिन्दी-उर्दू विवाद ज़ोरों पर था और अदालतों की भाषा भी उर्दू हो गई थी तब हिन्दी वालों के सामने समस्या खड़ी हो गई थी। मजबूरी थी कि वे उर्दू सीखें। जो इतना आसान नहीं था। तब राजा शिव प्रसाद सितारेहिन्द ने सुझाव दिया कि बोलने की ज़ुबान उर्दू ही रहे लेकिन फ़ारसी की सभी ध्वनियाँ देवनागरी लिपि में व्यक्त होनी चाहिए। बाद में उन्हें पता चला कि फ़ारसी की पाँच ध्वनियाँ क, ख, फ, ग, ज देवनागरी में नहीं हैं तो उन्होंने उन अक्षरों के नीचे नुक़्ता लगाने का प्रस्ताव दिया। नुक़्ता लगाना बहुत महत्वपूर्ण होता है। आपने कहावत सुनी होगी-'नुक़्ते के हेर-फेर से ख़ुदा जुदा हुआ।' आप ख़ुद फ़ैसला कीजिए जहाँ ज़रूरी है, वहाँ नुक़्ता लगाना कितना लाज़िमी है। नहीं तो अर्थ का अनर्थ होने में देर नहीं लगती। कुछ उदाहरण से समझिए- 'ज़माना' का अर्थ युग, काल; 'जमाना' का अर्थ किसी चीज़ को जमाना जैसे दही जमाना, 'ख़ाना' का अर्थ घर या आलमारी आदि के ख़ाने; खाना का अर्थ भोजन करना, ख़ुदाई का अर्थ सृष्टि, खुदाई का अर्थ कुछ खोदना। 'जलील' कहते हैं प्रतिष्ठित को और 'ज़लील' कहते हैं अपमानित को। ख़ुद 'ग़ज़ल' शब्द में भी ग और ज के नीचे नुक़्ता है। यह सब हिन्दी ग़ज़लकारों के सामने दिक़्क़तें हैं। इसी तरह उर्दू वाले बहुत को बहोत, मेरा को मिरा, ज़्यादा को ज़ियादा आदि लिखते हैं। इसे हिन्दी वाले अपने अनुसार लिखें तो भी दोष नहीं। यहाँ शब्द का वज़न गिरा कर काम चलाया जा सकता है। उर्दू लफ़्ज़ों की नाज़ुकी और कहन शैली भी हिन्दी से कुछ-न-कुछ भिन्न होती है। उर्दू की बहर और हिन्दी के गण भी पूरी तरह समान नहीं। हिन्दी वर्णमाला के कई शब्द उर्दू में हैं ही नहीं। जैसे घ, छ, झ, थ, भ,ष आदि। यानी दोनों के व्याकरण में बहुत अंतर है। इस तरह के शब्द-युग्म भी हिन्दी में नहीं होते– दिले नादां, हुस्ने अदा, ख़वाबे ताबीर आदि।

इसी से हिन्दी-उर्दू ग़ज़ल का विवाद भी उठ खड़ा हुआ। कुछ लोगों का मानना है कि ग़ज़ल, ग़ज़ल है, उसे हिन्दी या उर्दू ग़ज़ल कहने की ज़रूरत नहीं है।

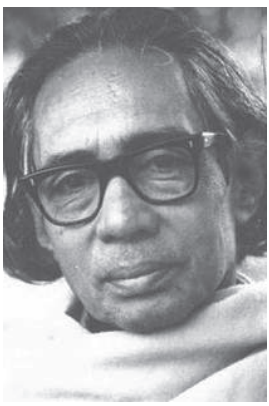
इस प्रकार हम देखें तो आज तक ग़ज़ल की मुश्तर्क़ा ज़ुबान नहीं बन पाई और अमीर खुसरो का सपना अधूरा ही है। ❑



रणजीत साहा

सोमनाथ होर
प्रतिभा और प्रतिबद्धता के प्रतीक

सोमनाथ होर का जन्म बांग्ला नववर्ष-यानी 13 अप्रैल, 1921 को चटगाँव या चट्टग्राम (अब बांग्लादेश) के एक निम्नवित्त परिवार में हुआ था। वैसे यह जन्मतिथि अनुमानाश्रित होती हुई भी सर्वमान्य है। पिता का निधन अल्पवय में ही हो गया था, इसलिए परिवार का सबसे बड़ा सदस्य होने के नाते किशोर सोमनाथ के कंधे पर आर्थिक दायित्व का बोझ भी पड़ा। उन्हें लगा, कोलकाता प्रवास शायद इस घड़ी कार्य में सहायक हो। काम तो उन्हें नहीं मिला, लेकिन यहाँ आकर उनके अनुभव में कई अमानवीय और अभावनीय दुर्घटनाएँ भी जुड़ती चली गईं।



महानगर कहे जाने वाले इस शहर की स्थितियाँ धीरे-धीरे नारकीय हो चली थीं। 1943 के दौरान कोलकाता जापानी बमों की चपेट में था और द्वितीय विश्वयुद्ध के साये में वहाँ महँगाई, बेकारी, भूख और छँटनी का आलम था। पूरे भारत में आज़ादी की जद्दोजहद ने उन्हें घर वापस लौटने को विवश किया लेकिन इस भाग-दौड़ और चारों ओर फैली भूख, शोषण, ग़रीबी, तबाही और सबसे बढ़कर अकाल की मार ने जहाँ साहित्यकारों, कलाकारों और संस्कृतिकर्मियों को हिलाकर रख दिया था, वहाँ युवा और अकेले सोमनाथ भी निरुपायता और विषमता का शिकार बने हुए थे।

चटगाँव और कलकत्ता में 1942-43 के दौरान में जापानी बम गिराए जा चुके थे। अफ़रा-तफ़री में अपने आंतरिक क्षोभ और नैराश्य के साथ कलाकार मन आस-पास मँडराते ख़ौफ़ को ही नहीं, मौत को भी बहुत नज़दीक से देख रहा था। इस ख़ौफ़नाक मंज़र की आँखों से न केवल आँखें मिलाईं बल्कि उन आँखों में उँगली डालकर सोमनाथ ने कई रेखांकन भी बनाए। सोमनाथ वह हृदय-विदारक दृश्य आजीवन नहीं भूल

सम्पर्क : *ई-मेल : drsaharanjit@gmail.com*

पाए जब जापानी बम की चपेट में आकर चट्टग्राम के लोगों के क्षत-विक्षत शरीर चीथड़ों की तरह यहाँ-वहाँ सड़कों पर बिखरे थे। इस नृशंस एवं अमानवीय कृत्य ने उनके कला-परिदृश्य को बदल दिया। उन्होंने इस विषम घड़ी में 12-13 साल की एक लड़की का चित्र आँका था, जिसकी देह बम के फटने से छितरी हुई, सड़क पर पड़ी थी। उसने एक कलाकार के संवेदनशील मन को बुरी तरह आहत और विचलित किया था...और एक तरह से यहीं से क्रमशः उनकी रेखांकन, फिर रंगांकन और अम्लांकन की यात्रा शुरू हुई थी।

यही नहीं, अपनी सामाजिक एवं सर्जनात्मक प्रतिबद्धता जताते हुए, वह कम्युनिस्ट पार्टी के सदस्य भी बन गए। उसी वर्ष यानी 1943 में बंगाल में भयंकर अकाल पड़ा। मानवीय पीड़ा और विवशता के अंकन के साथ उन्होंने पहले भी पार्टी के लिए, पार्टी के आग्रह पर कई पोस्टर्स, बैनर्स और चित्र बनाए थे। इन सबसे जहाँ एक रेखाकार के नाते उनमें आत्मविश्वास जगा, वहीं राजनैतिक एवं सामाजिक सहभागिता का अहसास भी तीव्र हुआ। इस कार्य में उनके सबसे बड़े प्रेरक बने रेखाकार एवं प्रतिबद्ध कलाकार चित्त प्रसाद। इन तमाम सक्रियताओं से ही उन्हें एक कलाकार के तौर पर, अपना आगामी कार्यजीवन एक सिरे से शुरू करने की प्रेरणा मिली।

प्रसिद्ध कम्युनिस्ट नेता पी.सी. जोशी ने चटगाँव में पार्टी के आयोजन के दौरान युवक सोमनाथ के रेखांकनों, पोस्टरों और चित्रों को देखने के बाद ही, उसे कोलकाता जाकर कला विद्यालय में दाख़िला लेने के लिए कहा था। यहीं से उन्होंने 1945 में डिप्लोमा प्राप्त किया। किशोरावस्था से ही आड़े-तिरछे रेखांकन करनेवाले इस युवा कला छात्र ने अपने कला अध्यापकों का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट तो किया था लेकिन तब क़स्बों और सुदूर क्षेत्रों में 'कला'-जैसे अमूर्त विषय को जानने-समझने और सराहने वाले थे ही कितने? बाद में भी, कोलकाता जैसे प्रबुद्ध शहर के कई कलाकार एवं संस्कृतिकर्मी जब युद्ध की विभीषिका और अकाल के अभिशाप में दम तोड़ते निरन्न बंगाल की दुर्दशा को रेखाचित्रों और अन्य कला माध्यमों में व्यक्त कर रहे थे, तब सोमनाथ होर जैसे युवा कलाकार स्पेनी गृहयुद्ध पर केन्द्रित महान कलाकार पिकासो की विश्वप्रसिद्ध कृत 'गुएर्निका' से बेख़बर, अपने समय और समाज की समस्याओं से जूझ रहे थे। इसी दौरान सोमनाथ ने गवर्नमेंट कलकत्ता आर्ट कॉलेज में दाख़िला ले लिया। यह निर्णय उन्होंने इसलिए भी लिया था क्योंकि आने वाले समय में उन्हें अपना और परिवार का बोझ भी उठाना था। यह कार्य एक सीमा तक आर्ट कॉलेज के उनके अध्यापकों ज़ैनुल आबेदीन, हरेन दास और सैफ़ुद्दीन अहमद के कला शिक्षण और उस समय के प्रसिद्ध चित्राकार चित्त प्रसाद के सनेहपूर्ण संरक्षण से सुगम हो सका। चित्त प्रसाद ने बताया कि कैसे रेखाओं को तब्दील कर संगठन के अनुरूप पोस्टरों को प्रभावी बनाया जा सकता है।

द्वितीय विश्वयुद्ध और 1940 के बाद, भारतीय स्वातन्त्र्य आंदोलन और फिर बंगाल में फैले भयंकर अकाल ने प्रत्येक संवेदनशील रचनाकार, कलाकार, पत्रकार और सामाजिक कार्यकर्ता को देश की चिन्ताओं से जोड़ दिया था। ऐसे में बंगाल की राजनैतिक भूमिका और भी महत्वपूर्ण हो उठी थी। कलकत्ता में कुछ चित्रकारों ने 'ग्रुप 1943' नामक समूह बनाकर इस बात की घोषणा कर दी कि भारतीय कला के स्वर को स्थानीय स्तर से आगे ले जाकर, अंतरराष्ट्रीय स्तर पर प्रतिष्ठा दिलाने की

आवश्यकता है। दूसरे, कला को सामाजिक प्रतिबद्धता के साथ जनता की आकांक्षाओं से भी जोड़ना होगा।

लेकिन 1945 में उपाधि लेने के बाद भी उन्हें कोई मनपसन्द नौकरी नहीं मिली। अपनी प्रतिबद्धता और पार्टी की माँग के अनुरूप वह पोस्टर और बैनर बनाते रहे। आज़ादी के बाद, अपनी राजनैतिक गतिविधियों हड़ताल, घेराव, तालाबंदी के कारण कम्युनिस्ट पार्टी के प्रभावी नेताओं के साथ छुटभैय्ये भी स्वभावतः सत्ताधारी दल की आँखों की किरकिरी बने हुए थे, ऐसे में उन्हें 'ऑपरेशन एसाइलम' के अंतर्गत भूमिगत हो जाना पड़ा था। यही नहीं, 1949-1950 के दौरान लगभग डेढ़ साल जेल की सज़ा भी भुगतनी पड़ी थी। जेल की सज़ा झेलने वालों में तब अन्य सक्रिय और वरिष्ठ पार्टी कर्मी थे मुज़फ़्फ़र साहब, ज्योति बसु (बाद में पश्चिम बंगाल के मुख्यमन्त्री), विश्वनाथ मुखर्जी, रज़ाक खाँ, गोपाल हालदार (प्रसिद्ध चित्रकार) आदि।

अपने भटकाव के दिनों में और गहरी निराशा के दौर को भुलाने के लिए सोमनाथ ने जो चित्र बनाए थे, उनके प्रिंट बनाने की तकनीक और इससे जुड़ी समस्याओं को सुलझाने के लिए कई प्रयोगों को अपनाया गया। इस कार्य के लिए देसी और सस्ती पद्धतियाँ तो उपलब्ध थीं लेकिन वे अपेक्षित परिणाम नहीं देती थीं, इससे असंतुष्ट और बेचैन इस प्रिंटमेकर ने एक नई पद्धति अपनाई। उन्होंने सबसे पहले प्लास्टर ऑफ़ पेरिस के घोल से सतह तैयार किया और इसके सूखते-न-सूखते उस पर रेखांकनों को गहरे उत्कीर्ण किया। सतह के पूरी तरह सूख जाने के बाद, पेपरमैशे पर उनके प्रिंट्स तैयार किए गए। इस कार्य में जहाँ उनकी मौलिक सूझ काम आई वहाँ वांछित टेक्सचर एक नया विन्यास उत्पन्न कर रहा था। यह अभिनव तो था ही, अप्रत्याशित भी बन गया, जब इन 'पल्स प्रिंट्स' पर यथास्थान लाल रंगों के छिड़काव से अपेक्षित प्रभाव उत्पन्न किया गया। इस प्रकार, लम्बे समय के बाद उनकी रचनात्मक प्रयोगधर्मिता को एक नया प्रस्थान मिला और ग्राफ़िक्स कला को आने वाले वर्षों में नया सोपान एवं सम्मान। ऐसे ही प्रयासों एवं प्रयोगों से भारतीय प्रिंट मेकिंग विधा में, बँधी-बँधाई लीक से हटकर कुछ नया और अलग करने की राह प्रशस्त हुई। सोमनाथ होर ने अपनी इसी कामयाब कोशिश को नाम दिया था 'क्षत' (ज़ख़्म)। इस बारे में उनका कथन है, "1943 का अकाल, 1946 के साम्प्रदायिक दंगों और युद्ध द्वारा गई तबाही ये सारी चोटें मेरी चेतना पर अंकित हो गई थीं, वैसे ही जैसे आरी बड़ी निर्दयता से पेड़ के तने की सतह काट डालती है। तेज़ाब जैसे बड़ी उग्रता से जस्ते या ताँबे की प्लेट पर आक्रमण करता है और आख़िरकार तभी कोई ज़ख़्म की तस्वीर उभरती है। इस शृंखला की तस्वीरें भी उन अभागे, उजड़े, भूखे और सताए गए लोगों की छवियाँ प्रस्तुत करती हैं।"

सोमनाथ होर ने भी, जैसाकि बताया गया, ग्राफ़िक्स में अपेक्षित परिणाम पाने लिए ही 'ज़ख़्म' (क्षत) शृंखला के चित्र आँकते हुए आधार प्लेट पर सीधे बटाली से प्रहार किया था। यही नहीं, नुकीले सूए का व्यवहार न कर सीधे अम्ल का प्रयोग किया था। और प्रिंट तैयार करने के पहले वांछित स्थान को गरम छुरे से, मोम के अस्तर को, अच्छी तरह कुरेद दिया था ताकि टेक्सचर अपेक्षित प्रभाव पैदा कर सके। सोमनाथ के ये प्रिंट्स उनकी कला यात्रा के क्रमिक अभिगम को समझने के लिए सबसे प्रामाणिक सोपान बन गए।

सोमनाथ होर द्वारा जिन चित्रों या चित्र शृंखला की चर्चा की जाती है, उनका (यथा

Wounds/घाव) उनके राजनैतिक अनुभव से भी सम्बन्ध रहा है। 'बर्थ ऑव ए ह्वाइट रोज़' (एक सफ़ेद गुलाब का जन्म) को उकेरते हुए उनका ध्यान कांगो (अफ्रीका) के अश्वेत नेता एवं प्रधानमन्त्री पैट्रिस लुमुम्बा (1925-1961) पर केन्द्रित था, जिनकी केवल पैंतीस वर्ष की आयु में नृशंस हया कर दी गई थी। यह चित्र एक संघर्षपूर्ण जीवन के दुःखद अंत के बावजूद, देश की स्वतन्त्रता और उपनिवेशवादी निष्ठुरता के विरुद्ध अफ्रीकी राष्ट्रीय शक्ति को प्रतीकित करता है। नस्लवादी कटुता का ही नतीजा था 'एक सफ़ेद गुलाब का जन्म'।

'ज़ख़्म' शृंखला के पूर्व, एचिंग, काष्ठ या धातु तक्षण के लिए जिन नुकीले या धारदार औज़ारों के साथ तेज़ाब या एसिड का इस्तेमाल किया जाता रहा, उनकी प्रक्रिया प्रविधि में सोमनाथ निरन्तर परिवर्तन करते रहे ताकि बेहतर परिणाम प्राप्त हों। नाइट्रिक एसिड के प्रयोग से ज़िंक या अन्य धातु पटल पर फूटनेवाले बुलबुलों, धुधुँआते बगूलों और उभरते फफोलों को सँजोकर एक नया प्रभाव उपन्न किया। उन्होंने इस सम-विषम और खुरदुरे पटल पर न्यूनतम रंगों के अनुभाग से वांछित आकार में कई प्रिंट्स तैयार किए।

बाद में, वे इंडियन कॉलेज ऑफ़ आर्ट में व्याख्याता बनकर गए और फिर दिल्ली पॉलिटेक्नीक ऑफ़ आर्ट में ग्राफ़िक कला विभाग में बतौर वरिष्ठ व्याख्याता अपनी सेवा प्रदान की। अंततः 1969 में कला भवन, शान्तिनिकेतन में पहली बर खुले ग्राफ़िक्स कला विभाग के प्रोफ़ेसर पद पर नियुक्त होने के पहले वे एम.एस. यूनिवर्सिटी, बड़ौदा में भी विज़िटिंग प्रोफ़ेसर रह चुके थे लेकिन इन महत्वपूर्ण पदों पर रहते हुए भी उनके उदार मनोभाव में न तो कोई बदलाव आया और न मन में कभी अहंकार।

मूर्तिकला के प्रति आरम्भ से ही सोमनाथ होर की रुचि थी इसलिए देर से ही सही, इस क्षेत्र में प्रवृत्त होने के बाद, काँस्य और धातु माध्यम में उन्होंने कुछ श्रेष्ठ कृतियों की सर्जना की। उनकी हर निर्मिति के पीछे कोई गहरी काली त्रासद छाया दीख पड़ती है। यह संत्रास उनके हर निर्माण को एक आयाम देता रहा चाहे वह उनके आस-पास की दुनिया के परिचित लोग हों, जीव-जन्तु (कुत्ता, बकरी), बिल्ली हों या फिर भूख, अभाव, वंचना और शोषण से लड़ने वाले थके-हारे मज़दूर-किसान हों या सड़क किनारे पड़े दम तोड़ते भीख माँगने वाले। स्वयं सोमनाथ होर के व्यक्तित्व निर्माण पर्व के भी कई प्रस्थान रहे। उन्होंने पहले दौर में समसामयिक यातनाओं को दृश्यांकित किया तो दूसरे दौर में बुभुक्षाग्रस्त कलाकार की यौन-चेतना से परिचालित कुछेक 'इरॉटिक' या ऐंद्रिक चित्र भी बनाए। अपने समसामयिक सन्दर्भों से जोड़ते हुए मार्क्सवादी चेतना के तनाव को उन्होंने कभी भूखी पीढ़ी की ऐंद्रिकता से तो कभी उस पीढ़ी के भटकाव को चित्रित किया। सोमनाथ जैसा कोई भी संवेदनशील चित्रकार, जो बंगाल में रहा हो, वह अपने चतुर्दिक् हो रहे परिवर्तनों और उथल-पुथल से अप्रभावित रहे, यह असम्भव था।

सोमनाथ की पहली चित्र प्रदर्शनी 1955 में कलकत्ता के चौरंगी टैरेस में रेबा के साथ हुई थी। उनकी कृतियों की विषय-वस्तु थी सामान्य, अभावग्रस्त, वंचित और शोषित जन। यहाँ उनकी काष्ठ खुदाई के कुछ प्रिंट भी बिके। उनकी निर्मितियों के ख़रीदारों में ऐसे भी कुछ लोग थे, जो प्रगतिशील आंदोलन से जुड़े थे, यथा स्नेहांशु आचार्य, गोपाल हालदार और उनके भाई नवीन हालदार। इसी तरह 1958 के आरम्भ में, एक जर्मन कला-रसिक ने भी उनकी कृतियों में रुचि ली थी और उनमें से

कुछ ख़रीदकर ले गए। दिल्ली प्रवास के दौरान कई अन्य विदेशियों ने उनकी कृतियाँ ख़रीदीं।

लेकिन जैसाकि सोमनाथ का आत्मलीन स्वभाव था, वह न तो कभी कला बाज़ार की ओर आकृष्ट हुए और न तथाकथित अभिजात कला-रसिकों तक अपनी पहुँच बनाने की कोशिश की। वह आजीवन उन्हीं विषयों और माध्यमों तक सीमित रहे, जिनमें उन्हें संतोष प्राप्त होता था और जो उन्हें चुनौतीपूर्ण लगता था।

सोमनाथ का यह मानना कमोबेश सही था कि आम भारतीय कला के प्रति उदासीन होते हैं। जो लोग थोड़ी-बहुत रुचि रखते हैं, वे भी परिचित या प्रचारित कलाकारों की निर्मितियों के पीछे ही भागते हैं, जिन्हें कोई कला का सौदागर, संस्था या फिर आर्ट गैलरी आयोजित करती है। निजी स्तर पर या दो-चार कलाकार मित्रों के सम्मिलित प्रयास से आयोजित चित्र प्रदर्शनी में कुछ ही लोग आते हैं और पत्र-पत्रिकाओं या स्थानीय अख़बारों में थोड़ी-बहुत चर्चा हो जाती है। बस, इतना हो।

प्रयोगधर्मा ओर प्रविधिपरक (यथा, एचिंग, ग्राफ़िक्स, इंटाग्लियो, पल्प प्रिंट, ड्राइ पाइंट आदि) माध्यम की जानकारी के अभाव में अधिकांश प्रेक्षक उनका आनंद नहीं उठा पाते। ऐसे में लगभग हतोत्साहित या निराश चित्रकार के बारे में, किसी अख़बारी कॉलम में कभी कुछ छप जाता है तो वह इसे दो-चार बार पढ़कर इसे काटकर या चिह्नित कर किसी फ़ाइल में सँजोए रखता है।

सोमनाथ ने कलकत्ता में सोसाइटी फ़ॉर कंटेपररी आर्टिस्ट्स की सदस्यता भी ग्रहण की थी लेकिन वह वहाँ नहीं रह पाए। उन्हें जान पड़ा कि दलबद्ध होकर वहाँ किसी स्वतन्त्रचेता कलाकार के लिए काम करना सम्भव नहीं। किसी भी समूह से परिचित होना, कला आंदोलनों की जानकारी रखना, आधुनिक और अद्यतन माध्यमों एवं विधियों के बारे में जानना आवश्यक है, लेकिन उनके प्रति समर्पित हो जाना अपनी रचनाधर्मिता को गिरवी रखना है। "किसी मेनिफ़ेस्टो को सामने लटकाकर कोई सार्थक निर्मिति या कला सृष्टि नहीं हो सकती।"

इस बात को बताने या जताने में सोमनाथ ने कभी संकोच नहीं किया कि वह अपनी क्षमता एवं सीमा को जानते हैं। भारतीय कला परम्परा के उत्कर्ष की दुहाई देकर कोई कला शैली आगे नहीं बढ़ सकती। कला आंदोलनों के नाम पर जो समूह आगे बढ़े, वे पश्चिमी कलांदोलनों के या तो पिछलग्गू बनकर रह गए या फिर कलाकारों की निजी शैली में ढल-बदल कर रह गए। सोमनाथ ने यह स्वीकार किया था कि 'सोशल (या सोशलिस्ट) रियलिज़्म' की बातें करते हुए हमने भी कई चित्र बनाए थे लेकिन हमें जल्द ही मालूम हो गया कि इसमें बाक़ी सब कुछ तो है लेकिन 'छवि' (चित्र) कहाँ है?

वैसे भी, पश्चिमी कला आंदोलनों की उपस्थिति को कौन याद करता अगर वान गॉग, पिकासो, ब्राक, मूर या अपने वरिष्ठ कलाकार मातीस जैसे प्रतिभावान कलाकार नहीं होते। आधुनिक भारतीय कलाकारों में सोमनाथ रामकिंकर, बिनोद बिहारी मुखर्जी के योगदान को निरन्तर सराहते रहे, जिनके साथ शान्तिनिकेतन में उन्हें काम करने का सुअवसर मिला था। अपने कॉलेज के दिनों में, कलकत्ता की किसी कला प्रदर्शनी में, वह ठगे से रह गए थे, जब उन्होंने रवीन्द्रनाथ द्वारा उकेरे गए चित्रों को देखा था। अत्यन्त भावदीप्त होकर उन्होने स्वयं से पूछा था, "क्या मैं कभी ऐसे चित्र आँक पाऊँगा?" यही कारण रहा, जिसके चलते वह परम्परा से अधिक कलाकार की

प्रतिभा को महत्व देते रहे। अपने समकालीनों में वह गणेश पाइन (1937-2013) के चित्रों के बहुत भारी प्रशंसक थे।

साठ और सत्तर के दशक में शान्तिनिकेतन के इर्द-गिर्द नक्सलवाद का असर और फिर बांग्लादेश में हुई सशस्त्र क्रान्ति आदि का भी कमोबेश प्रभाव उनकी कृतियों पर पड़ा था, क्योंकि अविभक्त बंगाल के तेभागा के सशस्त्र किसान आंदोलन बंगाल के अकाल और बंगाल विभाजन के बाद हुए साम्प्रदायिक दंगों को कच्ची उम्र में ही उन्होंने बहुत निकट से देखा और झेला था लेकिन इन सबको उन्होंने अपने रचना-कर्म का अंग बना लिया।

मैं शान्तिनिकेतन में अपने शोध-कार्यों की कालावधि में उन्हें अक्सर दूर से ही देखा करता था। बाद में उनपर एक आलेख भी लिखा था। लम्बे क़द वाले, लेकिन बीमार-से दीखनेवाले इस अध्यापक को कला भवन के बग़ल में ही, श्रीपल्ली के एक पुराने घर में ठहराया गया था, जहाँ वे अपनी पत्नी के साथ लम्बे समय तक रहे। सोमनाथ दा अपने विभाग के छात्रों, अध्यापकों आदि से भी ज़रूरत भर ही बातें किया करते। उस की सक्रियता एवं जानकारियों की सभी प्रशंसा करते और पर्याप्त सम्मान देते थे। गर्दन तक लम्बे फैले खिचड़ी बाल वाले; इस आदमी को दूर से पहचाना जा सकता था। नाभि के ऊपर तक नाड़े से बँधा सफ़ेद पायजामा, सामने जेब लगी फतुही और पाँव में चप्पल सोमनाथ होर का काम शायद इतने से ही चल जाता था। सर्दियों में देह के ऊपर गाढ़े की एक चादर... बस! स्वभाव से अंतर्मुखी लेकिन चेहरा हमेशा की तरह भावशून्य। आश्रम की गतिविधियों से भी एक हद तक उदासीन। हालाँकि आए दिन उनके कामों की चर्चा पत्र-पत्रिकाओं में और प्रदर्शनियों में उनकी सहभागिता के साथ उपलब्धियों की चर्चा होती रहती थी।

एकदम सीधी-सादी व्यक्तिगत जीवनशैली और साम्यवादी विचारधारा के बावजूद, सोमनाथ होर अपनी रचनात्मक प्रतिबद्धता को पर्याप्त सम्मान देते रहे लेकिन इसे कभी अपने संस्थागत कार्यों पर हावी नहीं होने दिया। कला की अवधारणा और सौन्दर्य सम्बन्धी प्रत्यय के कारण अवश्य ही, कम्युनिस्ट पार्टी से उनका मोहभंग भी हुआ लेकिन इससे उनके कलात्मक रुझान में कोई विचलन नहीं आया। विभिन्न शैक्षणिक संस्थानों में काम करते हुए वे कभी कहीं किसी विवाद में नहीं पड़े। उन्होंने न तो कभी बड़े दावे किए और न प्रतिष्ठा या प्रतिष्ठान के पीछे दौड़े। सम्मान पाकर भी आजीवन विनम्र बने रहे। 1983 ई. में कार्य से अवकाश ग्रहण करने के बाद शान्तिनिकेतन में रहकर ही वे सीमित साधनों, विशेषकर मोम की मूर्तियों से तैयार की गई काँस्य-निर्मितियाँ बनाते रहे। लालबाँध स्थित अपने आवास में वे अस्वस्थता के बावजूद अपनी कार्यशाला में निर्मितियाँ गढ़ते रहे।

राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय कला प्रदर्शनियों तथा राष्ट्रीय पुरस्कार एवं अंतरराष्ट्रीय सम्मानों से अलंकृत (यथा, ललित कला अकादेमी की रन सदस्यता, अवन-गगन पुरस्कार, आदित्य बिड़ला पुरस्कार, लेडी रानू मुखर्जी पुरस्कार, साए अरक्कल पुरस्कार, हीराचन्द पुरस्कार एवं मरणोपरांत पद्मभूषण (2007) सम्मान पाने वाले सोमनाथ होर अत्यंत सहज, सहृदय और अपनी सर्जना में डूबे रहने वाले समर्पित, प्रशांत और सिद्धहस्त कलाकार थे। 2006 ई. में शान्तिनिकेतन में उनका निधन हुआ और इस तरह भारतीय कला जगत का एक अग्रणी हस्ताक्षर हमसे चुपचाप विदा हो गया था। ❑



पारस कुंज

शृंगारिक और भक्तिपरक गीत के रचयिता
गोपाल सिंह नेपाली

'भारतीय सिनेमा : ओल्ड इज़ गोल्ड' वाक्य जब भी सामने आता है तब ज़ेहन में बस एक ही नाम उभर कर आता है और वह नाम है हिन्दी के अद्वितीय राष्ट्रकवि तथा गीतों के राजकुमार कविवर गोपाल सिंह 'नेपाली' का।



फ़िल्म 'नाग पंचमी' में लिखे उनके गीत-- 'अरथी नहीं नारी का संसार जा रहा है, भगवान तेरे घर का सिंगार जा रहा है' की मार्मिकता से प्रभावित होकर हफ़ीज़ जालन्धरी ने ठीक ही कहा था—

"विश्व में आज तक किसी भी कवि ने एक बेजान मुर्दे पर इतना ग़ज़ब का गीत नहीं लिखा... धन्य हैं कविवर 'नेपाली'!" सुप्रसिद्ध अभिनेत्री नसीम बानू (अभिनेत्री सायरा बानू की माँ) भी एक बार 'नेपाली' की कविता-- 'तुम कल्पना करो, नवीन कल्पना करो!'... को सुनकर कह उठीं, "मैं तो समझी थी दुनिया की सबसे मीठी जुबान उर्दू है, पर आपने यह साबित कर दिया कि हिन्दी से मीठी दूसरी कोई जुबान नहीं है!"

सन् 1944 में जब कविवर गोपाल सिंह 'नेपाली' फ़िल्मों में गए तब वहाँ हिन्दी कवियों में प्रदीप, शैलेन्द्र और भरत व्यास ही अधिक लोकप्रिय थे। शायरों के साम्राज्य में अपने लिए स्थान बना पाना, किसी हिन्दी-भाषी कवि वह भी साहित्यिक-कवि के लिए इतना सरल कार्य नहीं था। वहाँ का बड़ा ही विचित्र हाल था। करीब 95-97 प्रतिशत गीतकार उर्दूवाले थे जिन्होंने यह भ्रम फैला रखा था कि 'हिन्दी' कोई भाषा ही नहीं है, और जब भाषा ही नहीं है तो भला उसका साहित्य ही क्या होगा?

उर्दू गीतकारों ने फ़िल्मी-दुनिया के बड़े संगीत-निर्देशकों को पकड़ रखा था और उन संगीत-निर्देशकों ने भी हर हाल

सम्पर्क : *ई-मेल* : *paraskunjbgp@gmail.com*

में उर्दू गीतकारों से ही गीत लिखवाने की जैसे क़सम खा रखी थी। परिणाम यह होता कि हिन्दी-उर्दू दोनों गीतकारों में समन्वय ही नहीं हो पाता था। कहते हैं निर्माता ने लाख चाहा कि 'बैजू बावरा' फ़िल्म के गीत प्रदीप लिखें। बावजूद इसके ऐसा हो नहीं पाया। तब नौशाद शकील के अलावा किसी और से गीत लेते ही नहीं थे।

एक बार नेपालीजी के साथ भी ऐसा ही हुआ। फ़िल्म 'गजरे' में उनकी और नौशाद की जोड़ी जैसे बनते-बनते रह गई। फ़िल्म निर्माता मुस्लिम होते हुए भी नेपालीजी की कविता और गीतों के प्रशंसक थे। जब उन्होंनें नेपालीजी के साथ अनुबन्ध किया, तब नौशाद ने कहलवा भेजा-- "पाँच गीत नेपाली लिखें और पाँच शकील!" तब नेपालीजी ने कहा, "मैं लिखूँगा तो सभी गीत लिखूँगा!" ... परिणाम यह हुआ कि नौशाद ख़ुद फ़िल्म से अलग हो गए। उनके स्थान पर संगीत-निर्देशक अनिल विश्वास ने उस फ़िल्म का संगीत दिया, जिसके प्रायः सभी गीत काफ़ी लोकप्रिय भी हुए।

कहने को तो फ़िल्मों में प्रेमचन्द, उपेन्द्रनाथ अश्क जैसे कई दिग्गज साहित्यकार भी गए, पर टिक नहीं पाए किन्तु नेपालीजी ने 1944 ई. से लेकर लगभग 1958-60 ई. तक 'मज़दूर', 'नई राहें', 'नवरात्रि', 'सौतेली माँ', 'कविता', 'सफ़र', 'शिकार', 'बेगम', 'राजकन्या', 'जयश्री', 'शिवरात्रि', 'नाग पंचमी', 'नाग चम्पा', 'शिवभक्त', 'गजरे', 'कमल', 'लीला', 'श्री कृष्ण भक्ति', 'नरसी भगत', 'नज़राना' (1949 ई.), 'सनसनी' (1950-51 ई.), 'तुलसीदास' (1954 ई.), 'खुशबू' (1954-55 ई.), 'माया बाज़ार' (1958 ई.), 'जय भवानी' (1961 ई.)-- जैसी लगभग 50-56 से भी अधिक फ़िल्मों के माध्यम से तक़रीबन 400 से भी ज़्यादा गीत लिखे।

कविवर गोपाल सिंह 'नेपाली' ने 'हिमालय फ़िल्म्स' और 'नेपाली पिक्चर्स' नाम से अपनी ख़ुद की फ़िल्म-कम्पनी भी बनाई थी जिनके बैनर तले उन्होंने 'नज़राना', 'सनसनी' तथा 'खुशबू' के निर्माण सहित उनका निर्देशन भी किया था। माना जाता है कि 'जय भवानी' इनकी अंतिम फ़िल्म है, उसमें मुकेश और सुमन कल्याणपुर का गाया एक गीत था जिसे रवि ने संगीतबद्ध किया था। वह वर्षों बाद भी आज अपनी लोकप्रियता साबित कर रहा है-- 'शमा से कोई कह दे, कि तेरे रहते-रहते / अँधेरा हो रहा, कि तुम हो वहाँ तो / मिलने को यहाँ, पतंगा रो रहा...'

नेपालीजी ने फ़िल्मों में एक-से-एक श्रृंगारिक एवं भक्तिपरक गीत लिखे जिनमें अपनी साहित्यिकता को भरसक सुरक्षित रखने का प्रयास किया और काफ़ी हद तक वे सफल भी रहे। इससे यह साबित होता है कि नेपालीजी की साहित्यिक-प्रतिभा फ़िल्मी-दुनिया में जाकर भी सस्ती लोकप्रियता से न सिर्फ़ बची रही, बल्कि फ़िल्मी-गीतों को एक समुचित और सार्थक दिशा-निर्देश भी देती रही थी। कविवर गोपाल सिंह 'नेपाली' ने कम समय में ही हिन्दी फ़िल्मों को बहुत कुछ दिया। यदि भारत सरकार सहित भारतीय सिने-जगत इस गीतकार-कवि के योगदान पर पूरी गम्भीरता से विचार करे, तो इनके योगदान को सुन्दर शब्दों में विस्तारपूर्वक रेखांकित किया जा सकता है। ❑

कहानी



देवेन्द्र कुमार पाठक

कजरिया

उम्मीद का आख़िरी ठिकाना था यह। यहाँ भी नाउम्मीदी ही हाथ लगी। नत्थू ख़ान के ज़ेहनी-बीहड़ में अभी तक कुंजल साहू के बोल बवंडर की तरह हड़हड़ा रहे हैं...

"देख भाई नत्थू ख़ान, यह तो कतई सोचना भी नहीं तू कि तेरी नेकनीयती-देनदारी पर मुझे राई-रत्तीन भी शक है।.... भला बता तो, कब कितनी बार रुपया तूने माँगा और मैंने न दिया हो...? तुझ-सा ग़ैरतमंद, कर्ज़दार, किसान इलाके भर में कौन है भला?... मगर वक़्त ही ख़राब है भाई! ओलों की मार से अधमरे हम भी तो हुए हैं... बड़े खेतिहर पर बड़ी मार... एक तो कुदरत के क़हर के मारे, दूसरे, गए बरस जो दो नातिनों का ब्याह तय कर दिया था, उसे भी निबटाना पड़ा, हाथ तो तंग हो ही गया था। तेरी काकी की बीमारी ने और उल्टे मुझे क़र्ज़ लेने को मजबूर कर दिया। ख ड़े-खड़े शहरी आढ़तिये से रुपये लेना पड़ा... इलाज के लिए... तेरी काकी की तौल का रुपिया लगा दिया, यहाँ से मुम्बई तक मगर ऊपर वाले की मर्ज़ी, बुलावा जो भेजा था, उसे जाना पड़ा इस बूढ़े को छोड़कर..." कुंजल साहू की आवाज़ इतनी व्यथापूर्ण थी कि नत्थू ख़ान सुनकर अंतस तक व्यथित हो गया... घर की ओर लौट रहा है नत्थू ख़ान, नाकामयाब और बेचैन... जात-जमात, मज़हब-बिरादरी वालों को ही कुदरत के क़हर ने क्या बख़्शा था, जो वे मदद करते...।

हार-पहार, बाग़-वन के रूख-राई तक इस साल ओलों की ताबड़तोड़, लगातार पड़ी बेमौसमी बरसात में जल-भुन ऐसे हो गए थे, जैसे किसी बेकसूर, कमज़ोर, ग़रीब-असहाय की पुलिसियों ने डंडों से धुनाई की हो... समूचे इलाक़े की उन्हारी (रबी) की अधपकी खड़ी फ़सल मटियामेट हो गई थी...। खेत-दर-खेत, मीलों दूर, भितरीगढ़ की पहाड़ियों के पाँव तक पश्चिम-उत्तर में और छोटी-महानदी की इस बायीं बाँह पर आबाद दक्षिण-पूर्व के खेत-कछारों में, पाव-सेर के ओले धरती की उर्वरा छाती पर घंटे भर गिरे। अधमरे तो हो ही गए थे पौधे, ओलों के निर्दयी प्रहारों से, जब जलती-सी ठंडी आग में बिन सुलगे-धुँधुआए ही सफ़ेद ख़ाक के पुतलों में तब्दील हो गए तो मानो श्मशान हो गए खेत। खेतिहर तो मानो ज़िन्दा क़ब्र में दफ़न हो गया था।... सामने खड़े सवालिए कल की दुश्चिंता की चिता में उसका अंतस जलने लगा...

पंछियों की मौत का हिसाब कौन

सम्पर्क *: ई-मेल : devendrakpathak.dp@gmail.com*

करता...? कई किसानों के जानवरों पर भी मौत के साये मँडराने लगे थे। बकरियाँ-गाड़रें तो बीमार पड़कर मरीं, कई गाय, बछड़े, बैल भी बीमार हो गए। किसी ने बचा लिया, दवा-सेवा करके भी किसी ने खो दिया... धर्म का बेटा होता है बैल किसान के लिए। कमाऊ, कर्मजीवी बैल...! चौपाया, बेज़ुबान बैल...!

नत्थू ख़ान तो डेढ़ एकड़ का छोटा किसान है, उसके एक हल की बैल जोड़ी टूट गई... ओलों की मार खाया बैल, बीमार होकर एक दिन लहास होकर रह गया। बचा एक बैल... एक बैल से तो खेती होगी नहीं। कोई जुगाड़ भी नहीं बन पाया अब तक और आषाढ़ अधियाकर उतार पर है। कई दिन से आसमान मानसूनी बादलों से घिर-भर रहा है।... सूरज डूबने को है और उसकी पीली धूप कनेर के पीले फूलों-सी खिल रही है।... सहसा आँधी-पानी की जंग जारी हुई और आख़िरकार हार मानकर आँधी ने मानो आत्म-समर्पण कर दिया है...। पटापट मोटी-मोटी बारिश की आड़ी-तिरछी बूँदों से नहाने लगी–माह-दो माह की तपी धरती...! नत्थू ख़ान की पीठ-गर्दन और सिर पर पड़ती बूँदों ने उसका जिस्म तो ठंडा कर दिया लेकिन दुश्चिंता की चिता में जलता उसका ज़ेहन और भी भभक मारता-सा दहक उठा है।... दौंगरा (पहली बारिश) आ गया और बैल का जुगाड़ नहीं ही कर पाया वह...। अब कैसे होगी खेती? यह सवाल साँप-सा मुँह-बाए खड़ा हो गया, उसकी सोच के सँकरे गलियारे में...। यह सवाल बस बार-बार ज़िम्मेदारी का अहसास कराकर बेबसी के मारे आदमी को उसकी असहाय दशा का बदअहसास कराता है। यह सवाल किसी-न-किसी शक्ल में हर आदमी के मन-ज़ेहन में आज सिर उठाए, मुँह बाए खड़ा हो गया होगा...। खाद-बीज, बैल-हल, बखर-बाड़ी, हँसिया-कुदाली, मचान-झाबा, बाँस-परे आदि की जुगत-जुगाड़ में हर आदमी इस घड़ी हलकान हो रहा होगा...।

बारिश ने पाँव रोप लिए हैं मानो। आज दिल खोलकर बरसेगी, ऐसा जान पड़ता है। आड़ी-तिरछी बूँदों की बौछारें अब सीधी पड़ने लगी हैं। नत्थू ख़ान भीगता हुआ बाज़ार-गली से अपने टोले की खोरी में मुड़ गया। घरों के नालियों का बदबू मारता गंदला पानी गली-खोरियों में बह रहा है।... खोरी के परले सिरे पर गाँव की डोंगरिया (पहाड़ी) के पूर्वी घेराव पर उसका घर है ऊँचाई पर, खपरों की छानी का घर...। रसूल की अम्मी द्वार पर बैठी उसके इंतज़ार में कब से बेक़रार हो रही थी। नत्थू ख़ान को आता देख आबिदा ने राहत की लम्बी साँस खींचकर देहरी छोड़ दी। चेहरा तो अनबोले ही बोल रहा है नत्थू ख़ान का। आबिदा का चेहरा, जो नत्थू ख़ान के आने से राहत के अहसास से भरकर बाउम्मीद-सा हुआ था, एकबारगी ही नाउम्मीदी के बदअहसास से पुतकर धुँधला-सा गया। उसने कुछ पूछना-कहना मुनासिब नहीं समझा इस घड़ी। बरोठे (बैठक का कमरा) में उसने कंडे सुलगा कर पहले ही इंतज़ाम कर रखा था...। तर-ब-तर हो रहे नत्थू ने पैबंद लगा कुरता उतारने की कोशिश की तो कुरता मानो कराह उठा। सीवनें मानो नस-नस से चटकने-टूटने को हो गईं। गीला कुरता उतारने की इस नाकाम कोशिश में फटने का अंदेशा कर नत्थू ने पहने-पहने ही उसे समेटकर निचोड़ा और धोती खोलकर निचोड़ते हुए आबिदा की ओर बिना देखे ही कहा, "ग़रीबी में आटा गीला, बैल का जुगाड़ नहीं और दौंगरा भी आ गया, अब जाने क्या मर्ज़ी है अल्लाह की...!" धोती लपेटकर, दगदगाते कंडों की आँच में हथेलियाँ सेंकते हुए, उसने आबिदा

से पूछा, "बीड़ी है?"

दीवार पर बने आले में से एक बीड़ी निकालकर आबिदा ने सुलगाई और उसे देते हुए कहा, "अल्लाह की मर्ज़ी नेक जान पड़ती है मियाँ!"

बीड़ी का लम्बा सुटकारा लेकर, नाक-नथुनों से भकाभक धुआँ छोड़ते हुए नत्थू ख़ान ने आँखें मिचमिचाकर, कुछ धुआँ गले से छाती में किया और तल्ख़ आवाज़ में कहा, "भला कैसे?"

"...बखरी-टोले के सुकुल बब्बू आए थे टोले में, हामिदा से पूख रहे थे तुमको..." आबिदा ने बताया हुलस कर।

"क्या पूछ रहे थे?" नत्थू ख़ान ने पूछा-कुछ हुमक कर।

"...कुछ बात करनी है तुमसे।"

सुनकर पलभर को अंदाज़ा लगाने में खो-सा गया वह, फिर कुछ सोचकर बोला, "छाता दे तो, अभी ही हो आता हूँ सुकुल बब्बू के यहाँ, ख़ाना लौटकर खाऊँगा।"... कुछ असमंजस, कुछ डर के भाव से आबिदा ने रोकते हुए कहा, "पहले से ही भीग गए हो, सुबह हो आना...। छाता भी ठीक-ठिकाने का क्या होगा, कहीं पड़ा होगा ओने-कोने में धूल खाता...।" आबिदा ने किवाड़ लगाते हुए हामिदा को गुहार दी, "रोटी सिंक गई बिटिया?"

"...हओ अम्मी! अब्बा आ गए काय?" आँगन पर ऊपरी बरामदे के कोने पर बनी रसोई से एक महीन-सी आवाज़ पूरे घर में बिखर गई।

ख़ाना खाकर बीड़ी धुँधआते और फिर पल-पल, पाँव-पाँव सरकती, आषाढ़ के दौंगरे की उस बरसाती रात में खपरैल छानी पर बूँदों की टिपिर-टिपिर की एक रस लय-तान सुनते-ऊँघते नत्थू ख़ान का मन एक ही ख़्वाब बुनता रहा कि सुकुल बब्बू उसे ज़रूरत भर रुपये क़र्ज़ दे देंगे और वह बैल ले अपना हल खड़ा कर खेती कर सकेगा। जमा-पूँजी ब्याज पर देना चाहते होंगे? पहर भर रात गए, कब उसका जवान बेटा ननिहाल से गौंतरी (अवकाश-प्रवास) कर, बुआ के गाँव से घर लौटा, उसे नहीं मालूम। कब हमीदा ने छठवीं में पढ़ने की अपनी हसरत अम्मी पर ज़ाहिर कर तमाचा खाया, उसे नहीं मालूम...। कब बारिश थमी, कब रात ढली, उसे नहीं मालूम...। सुबह मुँह-अँधेरे जब नत्थू ख़ान की नींद खुली तो वह खूब ठहाका मारकर हँसा... क्योंकि रातभर उसने अपने हल और बैल जोड़ी के साथ खेत में जुताई की थी...। सपने में पल-ही-पल में हरियाती मकई, लहराती धान की सुआपंखी फ़सल देखी और देखा अन्नास के बोरों से भरा अपना घर...! ख़्वाब की एक-एक खुशहाल झाँकी, उस कल शाम की नागवार नाकामयाबी के दुख और तकलीफ़देह फ़िक्र से निजात दिलाकर, ताज़गी और उम्मीद से लबरेज़ कर चुकी है। उसने अल्लाह को याद करते हुए दुआ माँगी, "अय रहम दिल रहमान, सुकुल बब्बू की रूह में जज़्बा होकर, अपनी रहमत का करिश्मा दिखा दे...!"

...अभी आसमान की पाक-ओ-साफ़ देह पर से सुबह की लाली छूटी भी न थी; सूरज ने गाँव के खेतों के सीमांत पर बहती, ज़ोरों से बाढ़ पर आई छोटी-महानदी के गंदले पानी को अपनी उजली दुधमुँही किरणों से छुआ भी न था कि नत्थू ख़ान खोरी के बलुआ कीचड़ पर नंगे पाँव चलता हुआ, सुकुल बब्बू के घर के द्वार पर जा पहुँचा। उसने देखा, पूरा बखरी-टोला सो रहा है। बाबू साहेब मालगुज़ार ठाकुर शिवराज सिंह की दुमंज़िला बड़ी बखरी अपनी गई-गुज़री तारीख़ का रोना रोती बड़ी मनहूस-सी जान पड़ी उसे...। सुकुल बब्बू को आवाज़ लगाना उसे कुछ ठीक नहीं लगा।

एक फेरा बुद्धे लुहार की भट्ठी वाली गली का लगाने का उसे माकूल ख़याल आया, "देखें, सरऊ भट्ठी लगा रहा है या बरसाती-रात के खुमार में पड़ा खटिया ही तोड़ रहा है...!" भट्ठी वाली गली की ओर उसने पाँव बढ़ाए ही थे कि उसके पाँव हठात् थम गए...।

सुकुल बब्बू अपना सुबह का भजन रटते हुए द्वार खोलने आ रहे हैं। "समदरसी है नाम तिहारो, चाहौ तो पार करौ; प्रभो मोरे..." कुंडी खड़खड़ाई और किवाड़ चरमराते हुए खुल गए...। उस क्षण नत्थू ख़ान को बड़े खूबसूरत ख़याल ने सुकून से सरोबार कर दिया। "मेरे नसीब के बन्द द्वार खुल गए...!" "बन्दगी बब्बूजी!" गली से ही नत्थू ख़ान ने अदब से कहा।

"कौन है भाई...?" सुकुल अपनी सठियायी आँखें मिचमिचाते हुए देहरी पार कर सीढ़ियों से उतरे और गली में नत्थू ख़ान को बाअदब सिर झुकाए खड़े देख, उनकी उनींदी मुखाकृति एकबारगी चमक उठी। जाने किस सुखाशा से भरकर सुकुल बोले, "अरे तैं, नत्थू ख़ान...! बन्दगी भाई, बन्दगी...! आ भाई, आ... इधर बरामदे में निकल आ...!" ...छलके जा रहे हैं सुकुल, नत्थू ख़ान को देखकर। रातभर वे भी वही ख़्वाब बुनते रहे हैं, जो नत्थू ख़ान ने बुना था। "...मुझे पक्का भरोसा था नत्थू कि तू आज आएगा ज़रूर।"

"काहे के ख़ातिर तकलीफ़ करे रहेन बब्बूजी बुढ़ापे में! खबर पठाते, बंदा हाजिर होई जाता ख़ुद-ब-ख़ुद।" निचली सीढ़ी पर बैठते हुए नत्थू ख़ान खुशामदी स्वर में बोला। दरअसल वह भी बेताब हो रहा है... "अरे..रे.. रे...ए...! हुवाँ कहाँ बैठत हवै...? हिंया, हमरे ठाँव बैठ भाई...!" बरामदे पर पड़ी फट्टी पर नत्थू ख़ान को बैठाते हुए सुकुल ने बरोठे में जाकर एक मचिया उठाई और लाकर उसी पर बैठ गए। "हाँ तो बताव भाई नत्थू! ई साल खेती-पाती, हर पाथर का जुगत-जुगाड़ हवै कुच्छा...?" कुरते से थैली निकालते हुए सुकुल ने पूछा।

"अब का कही बब्बूजी? हमार बैल ओला की मार से बीमार हो अल्ला को प्यारा होई गवा रहा। दुसरे बैल का सेझा (संबल, विकल्प) नाहीं बना! कल आख़िरी उम्मीद कुंजल साहू की करके गए रहे, बोऊ हाथ झाड़ दिहिन। अब तो बस्स!" टूटती-सी आवाज़ में अपना दुखड़ा कह कर नत्थू ख़ान ने पूछा, "बब्बू, आप कइसन, काहे को बुलाए रहे...?"

हथेली पर तंबाखू मलते हुए सुकुल ने कहा, "देख भाई नत्थू, खेती तो होगी, तेरी भी, मेरी भी। बस्स, तैं मंजूर कर हमसे सट्टा-साझा करि लेव।"

"कइसन साझा बब्बूजी?" हतप्रभ-सा हो गया नत्थू, "समझे नहीं कुच्छ...?"

"अरे भाई, सीधी-सी बात नाहीं समझे।" हँसकर सुकुल ने एक चुटकी मली, तंबाखू मुँह में दबाई और हथेली की शेष मली तंबाखू नत्थू ख़ान की ओर बढ़ा दी। नत्थू ने हथेली में तंबाखू लेकर सुकुल की ओर देखते हुए मुँह में तंबाखू दाब ली।

"देखौ! एक बैल तोहार, एक बैल हमार। बस एक हल खड़ा होइ गवा कि नाहीं। रही बात हल जुताई कै; तो वोहू का सीधा हिसाब है। हमार एक जान की मिहनत, तोंहार दुई जान की मिहनत...। दस दिन हमार खेती साध देव, बीस दिन आपन खेती करौ तु..." सुकुल ने इतना कह पिच्चा-से पीक परछी से नीचे थूक दी।

इतना सुनते ही नत्थू ख़ान को तो जैसे ख़ज़ाना ही मिल गया। वह अपनी मंजूरी जल्दी-से जल्दी देने के प्रयास में तंबाखू की

पीक थूकना ही भूल गया और समूची तल्ख़ पीक गले में जज़्ब कर 'हिच्च-हिच्च' करता हुआ बोला, "मंजूर है बब्बूजी, मंजूर है...। सोलहों-आना मंजूर है।" और मुँह की बची तंबाखू गली में थूककर उसने हाथ जोड़ बन्दगी करते हुए कहा,"आप तो हमारे ख़ुदा होई गए बब्बूजी वरना हम तो बैल के मरे से लँगड़ा होई गएन हैं।"

"अरे भाई, तैं भी तो हमार भगवान होई गवा, जो ये साझा करने को मान गया, हम तो आँधर हैं, एक बैल के होते भी– समूचे आँधर। हमसे तो हल चलै ना सकत है...!"

...आगे सुकुल बब्बू ने नत्थू ख़ान को बताया, "पिछली सियारी की खेती करके उनका एक बैल किसी साँप-गुहेरा के काटने से मर गया था। रबी की खेती साझीदारी में जातिभाई राजाराम मिसिर ने की तो, पर सब उल्टा-सीधा कर, बीज-बुवाई, जुताई, खाद, सिंचाई का सब हिसाब लगाकर सोलह सौ रुपया की देनदारी उल्टा हमारे गले पड़ गई...। बुढ़ापे में ऐसी फ़ज़ीहत की है ममेरे भाई मिसिर ने कि परजात भी न करे...!"

इस तरह नत्थू ख़ान और सुकुल बब्बू की खेती का जुगाड़ बन गया। दोनों अपना-अपना दुखड़ा सुनाते, सपने बुनते इस साल की खेती में जुटे हैं। पूरा गाँव इस साझीदारी की तारीफ़ कर रहा है। एक राजाराम मिसिर ही नाक-भौं सिकोड़ता, ज़हर उगलता फिरता है। "...हमका बेईमान कहत रहे बुढ़ऊ!...ऊ ससुर, बेधरमी मुसलमान से अब नाता जोड़े हँय।...ऊ ईमानदारी का पुतला है न! देखबै, हमहूँ देखबै, कै दिना चली ई बेधरमी, कुजाती से मिताई – साझेदारी।"

अंधे-लँगड़े की कहानी साकार हो रही है, सुकुल और नत्थू ख़ान की इस साल की साझा खेती में...! दोनों के खेतों में मकई हरिया रही है। सिर पर कलगी बाँधे झूम रही है नई दुल्हन-सी छरहरी मकाई। ...खेतों में धान लहलहा रही है।...

दोनों बैलों की ख़ासी टहल-ख़ुराक करता है नत्थू ख़ान और उसकी बीवी-बच्चे...। छोटी-महानदी के बीहड़ में जहाँ पानी ठहरता, भराव नहीं लेता, वहाँ है सुकुल की दो एकड़ ज़मीन। इस बार नत्थू ख़ान ने उसे जोत-बो दिया है। तिली, उड़द, अरहर, मकई और बीच-बीच में खीरा-भिण्डी, टमाटर भी बोए-रोपे हैं उसने। औरत-मर्द निंदाई-गुड़ाई में जुटे रहते हैं साथ में बच्चे रसूल-हमीदा भी...!

दरअसल नत्थू ख़ान की ज़मीन छोटी महानदी की ही ओर है। सुकुल की ज़्यादातर ज़मीन गाँव के समीप है। इसीलिए उधर दूर की देख-रेख वाली ज़मीन पर सुकुल कभी खेती नहीं कर पाए। अपनी बिरादरी के किसानों को दे देते थे। जोतो-बोओ, जो मन-धरम कहे दे जाओ, नहीं तो न सही...।

इस बार नत्थू ख़ान ने उस ढलान की ज़मीन का सदुपयोग ही नहीं किया, रात में वहीं मचान बनाकर रखवाली भी करने लगा है। सुकुल के पुराने साझीदार ख़फ़ा हैं लेकिन गाँव के दूसरे किसान नत्थू की सूझ-बूझ और अच्छी फ़सल की तारीफ़ करते हैं सुकुल से। एक दिन तो सुकुल और सुकुलाइन काँखते-काँखते खुद को घसीट ले ही गए, उस बेक़द्र ज़मीन को देखने...। फ़सल देख दोनों की आत्मा हरिया गई। मारे खुशी और जोश के सुकुल-सुकुलाइन ने छोटी-महानदी के 'संगम घाट' वाले भगवान शिव के दर्शन करने का दुस्साहस भी कर लिया। वे दोनों भगवान के दर्शन कर, जब लौटे तो नत्थू ख़ान का बेटा रसूल एक टोकरा भर खीरा, भिण्डी, टमाटर लेकर साथ-साथ घर आया...! मोहल्ले के चार घरों में खीरा-भिण्डी, टमाटर बाँट आई

सुकुलाइन, फिर भी तीन दिन तक राँधती-खाती रही...। और उस दिन दोनों ने याद किया, अपने उस नालायक कपूत को, जिसने ईसाई औरत से कोर्ट-मैरिज करके, इस गाँव से नाता तो तोड़ा ही, माँ-बाप, घर, ज़मीन-जायदाद से भी मुँह मोड़ लिया...।

कितने अरमानों से पढ़ाया-लिखाया था उसे। शहर में अच्छी अफ़सरी पाकर अपनी ज़मीन और जड़ों की ही सच्चाई भूल गया...। हवा की पीठ पर सवार होकर उड़ गया पंछी सागर पार! पछुआ हवा का सुख फिर पूरब की इस ज़िल्लत भरी काँदों-कीच की गँवई ज़िन्दगी की ओर भला कब लौटने देगा। सुकुल ने छाती पर पत्थर धर लिया है। सुकुलाइन की आस कैसे टूटे, माँ जो है। आज नत्थू ख़ान अपने कोखजाये पूत से ज़्यादा अपना सगा जान पड़ा सुकुलाइन को। सुकुल को लगा उनका बैल मरा ही नहीं, वह नत्थू ख़ान के रूप में अवतरित हो उन्हें फिर मिल गया है, बुढ़ापे का सहारा...!

नत्थू ख़ान को ग़ैर-मुसलमान सुकुल बब्बू अपने मज़हबियों से बढ़कर हितुआ सिद्ध हुए। गाँव में हिन्दू हैं, मुसलमान हैं। हिन्दुओं में ब्राह्मण, क्षत्रिय, कायस्थ और तमाम परजन जातियों के कुछ अछूत, कुछ छूने लायक जातियों के लोग हैं। मुसलमान भी दो किसिम के हैं- एक किसिम के मुसलमान अपने को 'बहना' मुसलमानों से कुछ बेहतर मानते हैं। इन 'अंसारियों' के रिश्ते इलाहाबाद, सुल्तानपुर, उत्तर प्रदेश की तरफ़ ही होते हैं। 'बहना' मुसलमानों की तादाद ज़्यादा है। हर गाँव में दस-पाँच घरों के ये बहना धुनिए का काम करते हैं या मनिहारी, चूड़ी वग़ैरह पहनाने का रुजगार भी...। नत्थू ख़ान ठंड के दिनों में गद्दे-रज़ाइयाँ, तकिया वग़ैरह भरता-तागता और पुरानी रुई धुनकता है। विवाह-गौने पर तमाम हिन्दू जातियों की बेटियों की विदाई के लिए वह सेज की ताम-झाम बनाता है।

...विवाह में दोनों ही मज़हब के लोग बारात में जाते हैं। आपसी व्यवहार चलता है। मक़बूल नवदुर्गा में देवीगीत और 'फाग' में गंगा अवतरण-कथा गाता है। रामलीला के लिए मुसलमान यदि चंदा देते हैं, तो मुहर्रम में सवारी आने पर पीर से फ़रियाद कर मन्नतें माँगते हैं हिन्दू।

लेकिन इस मुसीबत में हम-मज़हबी एक भी काम न आया-न नत्थू ख़ान को, न सुकुल बब्बू को...

ख़ैर, यह तो दीन-दुनिया की दास्तान ऐसी ही है। सारी दुनिया से परे नत्थू ख़ान, सुकुल बब्बू की खेती के जलवे तो देखने लायक हैं...! दोनों अपनी-अपनी तरफ़ से राम-ओ-रसूल के प्रति कृतज्ञता जताते अघाते नहीं...। नत्थू का बैल सुकुल के लिए भगवान हो गया। सुकुल का बैल नत्थू ख़ान के लिए रहमान हो गया... मगर दो मुसीबत के मारों के ये सपनीले सुख के दिन इसी ख़रीफ़ फ़सल भर के लिए ही फूले थे, जैसे क्वार में दस-बीस दिन के लिए काँस और बसन्त में पलाश फूलता है।

मकई में दो-या-तीन भुट्टे फूट रहे हैं। भिण्डी तो मानो ख़ज़ाना खोले फल रही है। उड़द की बेलों पर हरी-हरी फलियों के लच्छे झूमने लगे हैं। टमाटर की बहार है। दोनों घरों में जी भर के सब्ज़ी पकायी-खायी जाती है। पास-पड़ोस वालों को भी सब्ज़ी मिल जाती है। ...नत्थू ख़ान बेचना चाहता था पर सुकुल ने पुण्य कमाने की उम्र में यह धरती माता का प्रसाद बाँटना ही ठीक समझ, मना कर दिया। नत्थू ने अपने हिस्से की सब्ज़ी भी नहीं बेची। सुकुल बब्बू की ज़ुबान से कभी-कभी क़ाज़ी

साहब बोलते लगते हैं उसे।

तिली के पेड़ों पर घंटियाँ गुँथती जा रही हैं। धान के पौधे दिन-ब-दिन बढ़ते-फैलते जाते हैं...। दस-बीस दिन में बराबर बारिश हो रही है और इस समय दोनों बैलों के मौज-मस्ती के दिन हैं। जुताई जो बन्द है तो फुरसत पाकर खूब चरते हैं। उछलते-कूदते हैं और आपस में सींग-मूड़ लड़ाते, खूब मस्तियाए फिरते हैं।

ऐसी ही मस्ती के मारे, मतवाले दोनों बैल एक दिन छोटी महानदी के बलुआ-कगार पर घास चरते-चरते दूर उधर निकल गए, जिधर खेतों से बहकर आया बरसाती नाला छोटी महानदी में आ मिलता है। स्वादिष्ट, रसीली फुलहर घास चर रहे थे दोनों। एकाएक सुकुल के बैल का संतुलन बिगड़ते ही पैर फिसल गया। बलुआ कगार भसकने लगा... बैल नाले की ओर सरकता हुआ, पूरी ताक़त लगाकर भी थमने में नाकामयाब ही रहा। धसकती-खिसकती बलुआ मिट्टी के साथ बैल का सारा श्रम बेकार हो गया और वह झाड़-झँखाड़ों में उलझता-गिरता एक दलदली खड्ड में कुछ इस तरह अड़कर औंधा हो गया कि उसका थूथुन खड्ड के दलदल में धँसने लगा... जब तक हिम्मत रही, बैल थूथुन बचाता फड़फड़ाता, उभरने का यत्न करता रहा, लेकिन कब तक...? खुद को धँसने से बचाने की कोशिश में वह अपने ही बोझ से दलदल में पल-पल धँसता ही गया।

नत्थू ख़ान का बैल भागता-हाँफता, 'बाँय-बाँय' हुँकारता-रोता जब खेत पर पहुँचा, तो सुकुल और नत्थू ख़ान मचान पर बैठे बारिश के बाद खिली, ढलती धूप का आनन्द ले रहे थे। बैल को अकेले ही भागते, बाँय-बाँय चिल्लाते देख नत्थू ख़ान, उसका बेटा रसूल, आस-पास के खेतों के कई किसान दौड़ पड़े पीछे-पीछे। जब तक नत्थू ख़ान लोगों के साथ महानदी के बलुआ कगार पर दूसरे बैल की खोज में हलकान होता रहा, तब तक बैल भी जबड़े में ले रही मौत से अपनी आख़िरी लड़ाई लड़ता रहा..! आख़िरकार उसकी साँसें छूटने लगीं, आँखें मुँदती हुई दलदल में पूरे मुँह के साथ धँसने लगीं। आ ख़िरी बार उसने समूची ताक़त समेटकर थूथुन को उछाला... 'बाँय-बाँय' का आर्त कंठ स्वर सुना नत्थू ख़ान ने, उसके बैल ने...! बेतहाशा पूँछ उठाए भागता बैल कगार पर खड़ा हुँकार भर-भरकर बलुआ कगार को खुरों से खोद रहा था...।

अब कीचड़ में थूथुन भी धँस गया था। बैल का भारी शरीर पहले ही समूचा दलदल में समा चुका था। खड्ड में धँस चुकी थी उसकी वह श्रम समर्पित बेजान समूची काया, जिसने बरसों सुकुल के खेतों की धरती की छाती चीरकर, मेहनत से फ़सल उगाई और सुकुल की उम्मीदों की कलियों को फूल बनाया। सुकुल का सगा बेटा तो परदेश जा बसा था पर उनका अपना पाला-पोसा कजरिया बैल जानवर होकर भी अपना फ़र्ज़ निभाता हुआ, आज उनसे नाता तोड़ विकराल काल के गाल में समा गया है।

सुकुल ने नत्थू ख़ान के कंधे पकड़कर बिलखते हुए नाले की ओर देखा और कहा, "मेरा कजरिया बैल नहीं मेरा ईश्वर था नत्थू!"

नत्थू ख़ान भी सुकुल के कंधे थामकर हिलकते हुए कहा, "हाँ, बब्बूजी हमरे खातिर तोहार कजरिया अल्लाह होई गवा रहा।"

अब दोनों एक-दूसरे के कंधे थामे हिलक-हिलककर रोते हुए नाले की ओर लुटी और भीगी हुई निगाहों से देखते ही रह गए, वहाँ अब दलदल ही था, जिसमें कजरिया का जिस्म मानो दफ़न हो गया था। ❑

कहानी



राजा सिंह

अपदस्थ

ख़ज़ाना कॉम्प्लेक्स में सैकड़ों दुकानें हैं, परन्तु एक भी दुकान पत्र-पत्रिकाओं की नहीं है। सीढ़ियों के नीचे अंडरग्राउंड में ज़्यादातर दुकानें खुलती नहीं हैं या अभी तक उठी नहीं हैं। बन्द हैं परन्तु उसे लगता है कि सारी की सारी अलॉट ज़रूर गई होंगी। मगर उसे क्या-- वह तो ले नहीं सकता।

वह विगत तीन दिनों से कमोवेश हर दुकान पर गया है, नौकरी की तलाश में परन्तु निराश होने के अलावा कुछ नहीं था। ज़्यादातर मालिक लोग ख़ुद दुकान चलाते हैं बिना किसी सहायक। कुछ अन्य दुकानों पर सहायक के रूप में सेल्स गर्ल्स हैं। उसे महसूस होता है कि आजकल सेल्स मैन मुश्किल से दिखाई पड़ते हैं। सब जगह गर्ल्स की प्रमुखता और वरीयता है। यहाँ जो सहायक के रूप में पहचान पाया है वे वर्कर्स हैं जैसे दर्ज़ी या मज़दूर।

वह शिद्दत से महसूस करता है कि यदि कोई पत्र-पत्रिकाओं या किताबों की दुकान होती तो अवश्य ही उसे काम मिल सकता था। उसे इस काम में दिलचस्पी है। फिर भी उसने कमोवेश हर दुकान में जाकर पूछा था परन्तु 'ज़रूरत नहीं' टैग के साथ उसे वापस लौटना पड़ा था।

मई की भद्दर गर्मी और बाहर लपलपाती गर्म लपटों ने उसका हलक़ सुखा डाला था परन्तु इस कॉम्प्लेक्स में पानी और पेशाब की कोई व्यवस्था नहीं थी। एक बार उसने बाहर बैठे गार्ड से पूछा था, उसने बाहर का रास्ता बताया था।

धूसर-सिलेटी आकाश और लपलपाती गर्म थप्पड़ मारती हवा के बीच प्यास से बेचैन वह बाहर निकलता है। अंदर घुटन, प्यास और अस्वीकरण ने उसे हाल-बेहाल कर रखा था। गेट से बाहर उत्तर दिशा की तरफ़ जाती सड़क के मुहाने पर खाने का एक ठेला खड़ा था, निस्संदेह उसके पास पीने का पानी भी होगा। उसे देखकर उसे प्यास के अलावा भूख भी उमड़ पड़ी।

दुकान के पास खड़े होकर भुक्कड़ निगाहों से इधर-उधर देखता वह सोचता है कि क्या उसके पास इतने पैसे हैं कि कुछ खा-पी सके और वापस अपने गाँव लौट सके? क्योंकि बिना कुछ खाए, पानी तो माँगा नहीं जा सकता है।

वह असमंजस में था। ठेले-दुकान में बैठी लड़की उसे देखती है। उस पर उसे दिलचस्पी जगती है किन्तु वह ग्राहक है, उसे

सम्पर्क *: ई-मेल : raja.singh1312@gmail.com*

उसी ढंग से आमंत्रित करती है। मुस्कुराती हुई' "आइए।" वह सोचती है कि शायद वह भी हँसेगा! परन्तु उसे लड़की में दिलचस्पी नहीं है। उसे प्यास बेतरह सता रही थी और भूख भी शोर मचा रही थी। लड़की दूसरी तरफ़ देखने लगी।

वह ठेले के पास सरक आया। उसके बोल निकल नहीं पा रहे थे। अब लड़की सीधे उसे देख रही थी। उसने पानी की तरफ़ इशारा किया।

"ज़रूर-!" लड़की ने कहा। उस समय उसके अलावा कोई और ग्राहक नहीं था। उसकी माँ डिवाइडर के पास एक बोरी पर लेटी उनकी तरफ़ देखने लगी।



"क्या है?" उसकी माँ ने पूछा। लड़की ने अनदेखी और अनसुनी की। वह उठकर बैठी। कुछ असामान्य न लगा तो फिर लेट गई।

लड़के ने छककर पानी पिया और तृप्त होकर कृतज्ञतापूर्वक उस लड़की को निहारा। वह साँवली सुन्दर लड़की थी, सुकन्या। उसे इस बिज़नेस में वह ठीक नहीं लगी।

"और कुछ?" लड़की ने पूछा।

"हाँ--!" वह खुश होकर मुस्कुराता है। उसने एक नज़र खाने वाले आइटम्स पर डाली। "कुछ ताज़ा व गरम।" उसने ऐसे ही कहा। लड़की को बुरा लगा। उसे अपनी किसी चीज़ पर शक नागवार लगता था। फिर भी उसने सब्ज़ी, छोले और पूरी परोस दी।

वह संतृप्त था लड़की और उसके सामान से। उसने एक बार फिर पानी पिया और चहकता हुआ निकला। उसने उसका नाम पूछा, "सुकेश--" उसने बेफ़िक्र होकर कहा।

सुकेश पिछली कई रातों से सो नहीं पाया है। यहाँ लगातार चार दिन आ रहा है और उसे उम्मीद नज़र नहीं आ रही है। यह आशियाना इलाक़ा उसके गाँव कल्ली से काफ़ी पास पड़ता है, लखनऊ महानगर का पॉश इलाक़ा उसे पूरी उम्मीद थी यहाँ उसे कोई-न-कोई काम मिल जाएगा। वह मोहनलाल गंज की दुकानों में कमी भटका था, क़रीब एक माह तक किन्तु वहाँ कोई जगह नहीं मिली। वह पहले से ही फ़ुल थी। उसके गाँव के कई लड़के वहाँ काम में लगे थे।

वह पढ़ने में औसत दर्जे से भी कम था। हाईस्कूल और इंटर दो-दो बार में किसी तरह ग्रेस मार्क्स पाकर पास हुआ था। घर वालों की आगे पढ़ाने की हैसियत नहीं थी। नौकरी की प्रतियोगी परीक्षा में वह कभी सफल नहीं हो पाया। उसके पास नौकरी दिलाने वाली कोचिंग के पैसे नहीं थे। फिर उसके पास नौकरी के फॉर्म भरने के पैसे नहीं बचे। वह लगातार असफलता के कारण उनसे फॉर्म भरने के पैसे माँगने से कतराने लगा था। घर में उसके अलावा तीन बहनें, दो भाई तथा माँ-बाप थे। बाबू पहले खेतिहर मज़दूर थे, अब बीमार रहते हैं परन्तु रात शराब पीने के लिए नहीं। माँ और उसकी बड़ी बहन गाँव में अपने घर के पास चाय की एक दुकान चलाते हैं। उससे घर का खाना-पानी कैसे निकलता है, वह अभी तक अनभिज्ञ है। उसने गाँव के कई लड़कों को शहर तहसील के दुकानदारों के यहाँ सेल्समैन की नौकरी करते देखा था और योग्य कहलाने लगे थे।

गर्म हवा का एक झोंका उसे वापस

सड़क पर ले आया था। अभी उसे कई जगह नौकरी की तलाश में विचरण करना था। कई शोरूमों में 'नो वेकेन्सी' स्थिति वह पहले दो दिनों में झेल चुका था। अभी बंगला बाज़ार की विभिन्न प्रकार की दुकानों में उसका अभियान बाक़ी था।

धीरे-धीरे समय सरक रहा था और साथ में दिन भी। हर दुकान में जाना, खड़े रहना। मालिक या मैनेजर की तरफ़ तकते रहना। प्रतीक्षा करना और उचित समय या मौक़ा देखकर रिक्वेस्ट करना। उसे यह सब अब बख़ूबी आ गया था। कभी-कभी लोग उसे सन्देह की नज़रों से देखने लगते तब उसे बड़ा असहज महसूस होता था परन्तु मॉल के कॉरीडोर में टहलते हुए कोई कर्मचारी, मैनेजर या मालिक उस पर, उठाईगीर, ग्राहक या नौकर में भेद नहीं कर पाते थे।

किताबों, पत्र-पत्रिकाओं की दुकान पूरे चार-पाँच किलोमीटर के आस-पास उसे नहीं दिखी। न किसी ने उसे बताई। उसे पूरा यक़ीन हो गया कि इस तरह की कोई दुकान इस इलाक़े में नहीं है। जब यहाँ नहीं है तो बंगला बाज़ार तो पुराना इलाक़ा है, वहाँ तो उम्मीद नहीं करनी चाहिए। ख़ैर, वहाँ अगले दिन खँगाला जाएगा।

सब जगह से 'न' सुनने बाद उसे एक जगह क्षीण आशा दिखी थी जब एक बड़े बुटीक की मालकिन ने उसे दर्जी की नौकरी ऑफ़र की थी। उनके पास तीन जेंट्स टेलर और एक लेडीज़ टेलर पहले से ही थे। उसके लिए क्या गुन्जाइश है? ज़रूर होगी तभी मैडम ने कहा परन्तु वह काम जानता नहीं था, न ही जल्दी सीखा जा सकता है। फिर भी उनसे यह अनुरोध किया ही जा सकता है कि उसे काम सीखने के लिए ही रख लिया जाए मगर क्या कुछ मिलेगा, सीखने के दौरान---वहाँ फिर अनुरोध करेंगे। अगले एक-दो दिन बंगला बाज़ार?

वह अपनी उधेड़बुन में था कि कब बंगला पुल आ गया, उसे पता ही नहीं चला। रात उतर रही थी। अँधेरा चारों ओर से घिरने लगा था। वह मोहनलाल गंज के लिए टैम्पो, मिनी बस या बस के इंतज़ार में खड़ा था।

मिनी बस में चढ़ते ही जब उसने किराया देने के लिए जेब देखी तो अचम्भित रह गया। उसने ठेले वाली लड़की सुकन्या को खाने के पैसे दिए ही नहीं। वह भूल गया। लड़की ने उसे टोका भी नहीं। क्या वह भी भूल गई, उसकी तरह?---भीड़ कहाँ थी?---वही तो सिर्फ़ अकेला ग्राहक था। ---या उससे अतिरिक्त सहानुभूति के तहत माँगा नहीं?-और उसे ऐसे ही जाने दिया। उसका दिल भर आया। उसकी आँखों की कोर गीली हो गई किन्तु उसे कल अवश्य पैसे दे देगा।

वह निश्चय करता है कि कल वह घर से जल्दी निकलेगा और सबसे पहले उसे कल के खाने का भुगतान करेगा, क्षमा-याचना सहित फिर अन्य कोई कार्य।

उसकी माँ ने इतनी जल्दी बिना भोजन किए जाने पर टोका और रोका परन्तु वह रुका नहीं। उसे कल का हिसाब चुकता करना था।

वह सुबह के नौ बजे ही पहुँच गया था। बंगला पुल पर उतरते हुए वह जल्दी-जल्दी उस ठेले पर पहुँचना चाहता था जहाँ उसका हमदर्द था। पुल से बंगला बाज़ार गुज़रते हुए आशियाना में दाख़िल होते हुए वह देखता है कि अभी कुछ खुला नहीं था, न खुलने के प्रक्रिया में था। मॉल, दुकान, शॉप, रेस्टोरेंट सब बन्द थे और ख़ज़ाना कॉम्प्लेक्स तो ग्यारह से पहले कभी लगता ही नहीं था। यह वह बेहतर जानता था। सिर्फ़ चाय की दुकानें खुली थीं।

सुकन्या का ठेला भी नहीं सजा था। उसकी माँ फूलवती और पिता ननकू ठेले में सभी खाने-पीने का सामान यथास्थान रखते दिखे। सुबह चाय की पाली समाप्त थी। अब उसके साथ भोजन बेचने की तैयारी प्रारम्भिक अवस्था में थी। उसका छोटा भाई डिवाइडर पर लोट-पोट हो रहा था। वह ज़मीन उबड़-खाबड़ और बेतरतीब घास से आच्छादित और छोटे-बड़े पेड़-पौधों से भरी थी।

मगर वह नहीं थी। उसकी आँखें उसकी तलाश में सिमट गईं। वह नहीं चाहता था कि कल के न भुगतान करने की ख़बर उसके माँ-बाप को लगे। इसलिए वह सुकन्या की खोज में था। वह उससे ही क्षमा और धन्यवाद अर्पित करना चाहता था।

वह इंतज़ार करता है परन्तु उसके दिखने के आसार नज़र नहीं आ रहे थे। उसने कुछ देर के लिए साईं मन्दिर में समय काटने की सोची तब तक वह आ जाएगी। वह ठेले को पार करते हुए मन्दिर की ओर बढ़ा। यद्यपि वह हनुमान भक्त था। हर मंगलवार अपने गाँव कल्ली से दूर हुलास खेड़ा पर संकटमोचन हनुमान मन्दिर अवश्य जाता था और अपनी अरदास उनके सम्मुख रखता, उसे पूर्ण विश्वास था कि बजरंगबली उसकी हर इच्छा पूरी करते हैं।

सहसा वह दिख गई। उसने भी उसे देखा जब वह मन्दिर की सीढ़ियों से उतर रही थी। वह ठिठक कर खड़ी हो गई और उसके पास पहुँचने का इंतज़ार किया।

"तुम इस वक़्त और यहाँ?" लड़की ने पूछा, उसकी आँखें उस पर टिकी थीं।

"क्यों, मैं क्यों नहीं?- आख़िर मुझे भी भगवान से कुछ माँगना रहता है।" उसने उधर अपनी आँखें मन्दिर के गेट के भीतर भगवान की मूर्ति पर स्थिर की जिनकी इतने दूर एक धुँधली-सी आकृति नजर आ रही थी।

"ज़रूर... ज़रूर! साईं भगवान सभी की मनोकामना पूर्ण करते हैं।" उसने बड़े विश्वास से कहा, "क्या माँगना है?" उसकी निगाहें उस पर सिमट आई थीं।

"एक अदद नौकरी--बहुत सख़्त ज़रूरत है।" यह कहकर वह हँसने लगा। सुकेश की हँसी से वह झेंप गई।

"क्या तुम्हारी कोई इच्छा पूरी हुई है?" उसने पूछा।

"क्यों नहीं-- ?---तुम-- !" उसने बहुत धीरे-से कहा। फिर वह हँसने लगी। वह देर तक हँसती रही। उसकी हँसी से वह डर गया और जल्दी से मन्दिर में प्रवेश कर गया।

सुकन्या ने उस मूर्ति के पास हलके से उसका हाथ पकड़ा। वह पलटा। वह नीचे झुक आई और उसने धीरे-से पूछा, "तुम यहाँ पहले कभी आए हो?"

"नहीं।' उसने अनायास ही कहा।

वह मुस्कुराने लगी। उसकी मुस्कुराहट में विनोद के साथ एक आशा की किरण थी। सुकेश उसकी मुस्कुराहट में बँध गया। उस बन्धन को तोड़ने के लिए वह साईं की मूर्ति की तरफ़ मुड़ा और जल्दी से अपनी आँखें बन्द कर लीं।

सुकन्या अपने पंख फैलाकर उन्मुक्त वहाँ से उड़ चली।

लाख प्रयास और अनुनय-विनय और ग़ुस्से के इज़हार के बावजूद उसने खाने के पैसे नहीं लिए। कहा, "जब नौकरी लग जाएगी तब सारे इकट्ठे वसूल लूँगी... अभी ऐश करो!" अब वह मुस्कुरायी और देर तक उसके चेहरे पर हँसी खिलती रही।

समय दस के पार जा चुका था और नाश्ते-खाने के ग्राहक आने लगे थे। उसने वहाँ से हटना उचित समझा। उसके ठेले पर सस्ता

मिलता था, इस कारण मज़दूर और ग़रीब तबक़े के लोगों की भीड़ काफ़ी रहती थी।

वह खिसिया गया था परन्तु एक हमदर्द मिलने की खुशी भी उस पर तारी थी। अब उसे दूसरे हमदर्द की तलाश थी, जो शायद ख़ज़ाना की उस बुटीक की मालकिन के रूप में फलित हो, उसने सोचा।

सुकेश कब का आया हुआ है। उसने अभिवादन भी किया था परन्तु मैडम कहीं और ध्यान-मग्न थीं। जैसेकि वह हो ही नहीं। कोने वाली लड़की ने उसे देख लिया है किन्तु वह भी कुछ नहीं कहती है और वह फिर अपने काम में जुट जाती है। वह सतर्क नज़रों से अवलोकन करता है।

मैडम चुप बैठी हैं। पास वाली कुर्सी पर उनका पर्स रखा है। काउंटर के दूसरी तरफ़ कस्टमर्स के लिए तीन कृर्सियाँ ख़ाली रखी हैं। बुटीक शॉप के एक कोने पर एक लड़की टेलर बैठी, वह कुछ सिल रही है। मैडम के ऊपर दीवाल में रैक है जिसमे काँच के स्लाइडिंग डोर लगे हैं। उन रैकों में कपड़े के कई तरह के कई रंग के थान रखे हैं। एक दरवाज़ा बाहर की ओर है जिससे ग्राहक प्रवेश करते हैं। एक दरवाजा पीछे की तरफ़ भी है जिसे सिर्फ़ के लिए है। बाहर दरवाज़े के दोनों कोनों पर डमी खड़ी है, लेटेस्ट और स्टाइलिश डिज़ाइन के परिधान पहने हुए। मैडम की तरफ़ चौथे कोने पर एक स्टील की अलमारी जिसे सिर्फ़ मैडम ही संचालित करती हैं।

मैडम उठीं, बिना उसकी तरफ़ देखे और बुटीक के पीछे दरवाज़े से निकल जाती हैं। वह खड़ा रह जाता है। अचानक उसके दिमाग़ में आता है कि कहीं मैडम गायब न हो जाएँ, जल्दी ही मिल लिया जाए। वह बाहर निकल कर बरामदे को पार करते हुए दूसरे दरवाज़े के पास आता है तो मैडम दूर जाते दिख जाती हैं। वह बरामदे में चलती हुए किसी और शॉप में जाती दिखती हैं। वह एक पल ठहरती हैं फिर उसमें घुस जाती हैं।

वह लपककर उस शॉप में पहुँचता है। वहाँ पर तीन-चार दरजी कारीगर बैठे सिलाई कर रहे थे। उनके आते ही सब अटेंशन की मुद्रा में आ जाते हैं। वह बिगड़ रही हैं धीमे-धीमे आवाज़ में, एक ऐसे स्वर में जो सिर्फ़ उनकी ही पहुँच तक था।

"आज सारे दिन में कल की डिलीवरी का सारा वर्क फ़िनिश हो जाना चाहिए। ग्राहकों को यदि हम तय समय पर डिलीवरी नहीं दे पाएँ तो कौन आएगा अंजलि बुटीक में?"

"ज़रूर--ज़रूर मैडम। आज पूरा करके ही जाएँगे।" सभी ने यही बात दोहराई थी। फिर भी उनके चेहरे पर संशय बना रहा।

"ठीक है।" उन्होंने कुछ चिन्तित स्वर में कहा। वह जाने के लिए पलटी।

मैडम ने उसे देखा। उनकी आँखों में हल्का-सा विस्मय था, "आप?--आप काफ़ी अजीब हैं!"

"मैंने सोचा आपने मुझे रखने का निर्णय ले लिया होगा?" उसने पूछने के ढंग से कहा।

"शायद यह ग़लत होगा। सिलाई की ट्रेनिंग---- कौन देगा?--

किसको फ़ुर्सत है?--फिर ट्रेनिंग देने में पैसा लिया जाता है। --दिया नहीं जाता है। समय की बर्बादी है --फिर आप पढ़े-लिखे इंसान हो, यह कारीगरी का काम --अब ऐसे कैसे सीखोगे?--"

वह मायूस होता है फिर सम्भल जाता है।

"शायद आप नाराज़ हैं?" उसने ऐसे ही कहा।

"पता नहीं--शायद नहीं हूँ। आपको रखना तो चाहती हूँ आपकी परिस्थिति को सुनकर परन्तु किसलिए, समझ में नहीं आ

रहा है?--ख़ैर-- देखते हैं।" वह चिन्तित नज़र आई।

वह हँसने लगा।

"क्यों, आप हँसे क्यों?"

"कुछ नहीं, मैं आपकी उलझन दूर करने के लिए कुछ एडवाइस करना चाहता हूँ। यदि आप माइंड न करें?"

"कहिए?" उन्होंने कुछ अन्यमनस्क होकर कहा।

"मैडम! आप घर-परिवार देखती हैं। बुटीक देखती हैं। दोनों जगह का घर और बुटीक का हिसाब देखना। बैंक, बिज़नेस और कर्मचारियों पर कंट्रोल आदि--कैसे कर पाती हैं यह सब? आप अपने पर ज़्यादती नहीं कर रही हैं? शायद कुछ ठीक नहीं हो पा रहा हो जैसा आप चाहती थीं। टाइम मैनेजमेंट तो अवश्य ही अस्त-व्यस्त हो गया होगा?---क्या आप को एक पढ़े-लिखे सहायक की ज़रूरत नहीं है?"

वह चुप हो गया। उसे ऐसा लगा कि मैडम नाराज़ होकर लाल हो रही हैं। वह कुछ कठोर बोलना चाहती हैं। उसने फिर कहा, "माफ़ करिएगा। शायद मैं ग़लत हूँ?"

वह उसे वैसे ही देखती रहीं परन्तु अब उनके देखने में कुछ कोमलता नज़र आ रही थी। उन्हें लगा कि वास्तव में बुटीक के कार्य प्रबन्धन में उन्हें कुछ राहत चाहिए। उन्हें घर पर ज़्यादा ध्यान देने की ज़रूरत है। पहले वह हँसीं, उसकी चतुरता पर। फिर कहा,

"अच्छा। आओ मेरे साथ!" वह रिलैक्स थीं। वह मुस्कुरा रही थीं।

वह उत्साहित हो गया। उसे लगा काम बन जाएगा। उसकी आँखों में उम्मीद उभरने लगी।

मैडम ने वास्तव में उसे प्रबन्ध सहायक की भूमिका प्रदान कर दी। साथ-ही-साथ यह हिदायत भी दी कि नाप लेना, सिलाई और कटिंग और सीखते चलना है। यह सब मैं सिखाऊँगी, किसी और को डिस्टर्ब नहीं करना है।

इस बीच अवश्य कुछ दिन गुज़रे होंगे कि उसका ध्यान सुकन्या की तरफ़ गया। उसे अभी तक नौकरी मिलने की ख़बर नहीं दी थी।

फिर वह दिन आया जब उसने उसे बताया। उसने उसे साईं मन्दिर में ले जाकर पूजा-अर्चना की। मन्दिर के गलियारों के बीच वह उसका हाथ पकड़कर चलती है और तब तक नहीं छोड़ती है जब तक साईं बाबा की मूर्ति नहीं आ जाती है। उसे बाबा पर बहुत श्रद्धा है। तब वह उसका हाथ छोड़कर सिर पर दुपट्टा रखकर आँखें बन्द कर बुदबुदाती है। शायद प्रार्थना कर रही है। प्रार्थना में कुछ माँग रही है। --"क्या?' लेकिन जब आँखें खोलती है, वह पूछता है, उसने कभी नहीं बताया। कहा, ---"कुछ नहीं!" "पता नहीं"---इसका क्या मतलब था?

समय व्यतीत हो रहा था। वे फिर मिले थे, नहीं दिखे थे। वह निश्चय करता है कि आज लंच वहीं करेंगे। उसे हैरानी होती है कि वह उससे दूर हो रहा है।

लंच टाइम हो गया था। मैडम अपने घर जा चुकी थीं। आज वह जान-बूझकर अपना टिफ़िन नहीं लाया था। नेहा ने उसे अपने टि फ़िन से ऑफ़र किया। उसने इनकार किया कि आज वह बाहर खाएगा। उसने उससे नेहा से देखने को कहा और ख़ज़ाना से बाहर निकल आया।

फिर वह आगे ठेले की ओर बढ़ा। वह बहुत सहज भाव से आगे उसके निकट जा रहा था। जैसे वह उसकी प्रतीक्षा ही कर रही हो। यह स्वाभाविक था जैसे पिछले दिनों वह किया करती थी।

उसके ठेले पर काफ़ी भीड़ थी। वह दिख नहीं रही थी। पीछे खड़ा सुकेश बहुत ही विरक्त भाव से मुस्कुरा रहा था। ठेले पर उसकी माँ और भाई सक्रीय थे परन्तु उसका पिता डीवाइडर पर मोमिया बिछाकर लेटा ख़र्राटे भर रहा था किन्तु वह नहीं दिख रही थी। वह इधर-उधर नज़र दौड़ाता है। उसकी माँ ताड़ लेती है।

"आज बहुत दिन बाद--कैसे?' वह औरों को सामान दे चुकी है और अब उससे मुख़ातिब होती है।

"कुछ खाना है।" उसने बहुत ही शान्त एवं सहज स्वर में कहा। हालाँकि वह उसके पूछने में व्यंग्य भाँप गया था।

"आज भी ख़ाली हाथ हो?" उसने फिर उस पर तंज़ कसा।

"ख़ाली हाथ--?--नहीं।" उसकी आवाज़ तल्ख़ हो उठी थी। फिर कुछ याद करते हुए वह रुक गया।

"नहीं---तो फिर सुकन्या की तलाश क्यों?"

उसका मन किया कि वह वहाँ से भाग जाए परन्तु यह सोच कर रह गया कि उसकी माँ का शक पुख़्ता हो जाएगा। वह अच्छी तरह जानता है कि उसे सुकन्या के अलावा कोई पसन्द नहीं करता है। शायद उन्हें पता नहीं है कि उसकी नौकरी लग गई है। सुकन्या ने बताया भी नहीं। वह क्योंकर बताने लगी जब तक कि उसके विषय में बात न छेड़ी जाए।

"क्या खाओगे?" उसकी माँ ने आजिज़ आकर कहा।

उसने दाल-रोटी, सब्ज़ी-चावल सब खाने की इच्छा ज़ाहिर कर दी। हालाँकि उसकी भूख मर गई थी। उसकी माँ ने ठेले के बाहर निकले पटरे पर सब परोस दिया।

खाना खाते हुए उसकी नज़रें सुकन्या तलाश रही थीं। --बाद में उसका ध्यान अन्य की तरफ़ गया तो देखा कि ठेला अन्य ग्राहकों से पूरी तरह भर गया है। दरअसल उसकी माँ उसकी तरफ़ ही किसी इरादे या संकल्प से देख रही थी। अब उसकी निगाहें अन्य ग्राहकों पर भी बँध गईं।

अचानक वह बदहवास होकर ठेले की तरफ़ आती हुई दौड़ती दिखी---उसका ध्यान ठेले पर था ग्राहकों पर---"अम्मा--पालिका गाड़ी--बचाओ--!" उसकी माँ स्टूल में बैठी उतरने के प्रयास में गिर जाती है, फिर भी लड़खड़ाते हुए वह ननकू को उठाने भागती है। तब तक सुकन्या फुर्ती से ठेला लेकर घसीटते, चलाते हुए साईं मन्दिर की गली से गुज़रते हुए मन्दिर के पीछे जगह में सुरक्षित निकल जाती है। उसके पीछे फूलवती, ननकू और छोटे भी भागते हुए विलीन हो जाते हैं।

कुछ ग्राहक खा चुके होते हैं और कुछ आधे-अधूरे रह गए हैं। उसके मुँह में कौर और हाथों में निवाला रह जाता है। वह तिलमिला कर रह जाते हैं। उनमें कुछ हाथ धोकर निकलने के फ़िराक़ में और कुछ क्या तमाशा है, समझने की फ़िराक़ में। फिर वे सभी ठहर कर रह जाते हैं जब लखनऊ नगर निगम की 'अतिक्रमण हटाओ' दस्ते की गाड़ी आकर रुकी और उसमें से झटपट कुछ कर्मचारी उतरते दिखे। वे कोई ठेला आदि न पाकर तिलमिला कर रह जाते हैं जबकि वहाँ ठेले होने के स्पष्ट प्रमाण मौजूद थे। ननकू का ठेला नदारद परन्तु उसके ग्राहक सशरीर मौजूद। वहीं कुछ क्षण रुकते हैं, देखते हैं और कुछ न मिलने पर गाड़ी आवाज़ करती हुई चली जाती है। ननकू, फूलवती, छोटे और सुकन्या हवा में थे और वह स्तब्ध ठहरा है।

सुकेश मन-मस्तिष्क में घटनाओं में खोया रोबोट-सा अंजलि बुटीक लौट आता है।

वह जड़-सा अपनी सीट पर बैठा है। पिछले कुछ क्षणों में कितना कुछ असामान्य घटित हो चुका है। क्या ऐसा कुछ वास्तव में हुआ है। वह तो उसके कारण-या कुछ ऐसा उसका भ्रम है। एक झूठा भटकाव।

नेहा ने जब एक गिलास पानी उसके टेबल पर रखा तो उसे अहसास हुआ कि वह कहाँ है। वह एक साँस में पूरा पानी पी जाता है और एक नज़र उसकी तरफ़ देखता है। एक ऐसी नज़र जो निहायत अपरिचित और बेगानी हो।

अब तक वह सहज और स्वाभाविक नहीं हो पाया था। बेचैनी थी कि आज भी वह खाने का भुगतान नहीं कर पाया और न ही सुकन्या से मिल पाया। वह नेहा को धन्यवाद भी---?

इधर वह कई दिनों से महसूस कर रहा है कि वह मशीन में तब्दील होता जा रहा है। घर से सुबह नौ, साढ़े नौ बजे निकलता। दस बजे तक मैडम के घर आशियाना शॉप की चाबी लेने जाता, फिर शॉप और कारख़ाना खोलता। उसके बाद ही सारे कर्मचारी आते। मैडम बारह बजे तक आतीं और चार-पाँच बजे रुककर वापस अपने घर। उसे रात नौ बजे के बाद बुटीक बन्द करके चाबी मैडम को सौंपकर अपने घर जाना हो पाता था।

साप्ताहिक बन्दी गुरुवार की होती थी परन्तु जब से सुकेश आया है अंजलि बुटीक अब उस दिन भी खुलता है, आधा-अधूरा। कारीगर कोई नहीं आता इसलिए कारख़ाना बन्द रहता था। मुख्य बुटीक शॉप का फ्रंट गेट बन्द रहता सिर्फ़ बैक डोर भिड़ा-अधखुला रहता। आर्डर-बुकिंग एवं कपड़े की डिलीवरी आदि के लिए। सुकेश और नेहा को आना पड़ता है क्योंकि मैडम का मानना है कि इन दोनों का बुटीक की आमदनी बढ़ाने में कोई सक्रिय योगदान नहीं है। हालाँकि तैयार कपड़ों में बटन टाँकना, प्रेस करना तथा अल्टरेशन उसी के ज़िम्मे है और सुकेश के आने के पहले सहायक की ज़िम्मेदारी भी वह वहन करती थी।

एक बार तो नेहा को लगा था कि सुकेश के आने से उसकी नौकरी को ख़तरा है परन्तु मालकिन ने उसे बक़रार रखकर दोनों पर अहसान कर दिया था। उसे नेहा से सहानुभूति होने लगी थी। लड़की होकर वह सातों दिन आ रही थी। वह उसकी मदद अवश्य करता था। काम सीखने और टाइम पास करने के बहाने वह उसके कई काम निपटा दिया करता और उसे रिलैक्स कराता।

उसे शिद्दत से महसूस होता कि वह शायद बदल रहा है। उसकी निष्ठाएँ परिवर्तित होती जा रही हैं। बहुत दिनों से वह अपने इष्टदेव हनुमानजी के पास नहीं गया है और हर गुरुवार साईं कृपा प्राप्त करने में सफल रहता। उसमें यह बात घर कर गई कि उसकी नौकरी साईं-कृपा से मिली है। बाबा से मिलने में सुविधा होती जा रही है और संकटमोचन भगवान से मिलना दुर्लभ। ऐसे ही सुकन्या के साथ भी हो रहा था। जब वह साईं मन्दिर जाता तो वह जा चुकी होती और जब लौटते वक़्त वह अपने ठेले के ग्राहक से गहरी और व्यस्त होती जबकि नेहा से साथ काफ़ी मिल रहा है। धीरे-धीरे वह दूर होती जा रही है और यह निकट से निकटतम। क्या प्यार उपलब्धता का मोहताज है?

वह अपनी सोच पर हैरान होता है। अपने सिर को एक झटका देता है और वापस आता है। देखता है कि नेहा उसे एकटक देख रही है।

"क्यों--? तुम उसकी फ़िक्र कर रहे हो?" नेहा ने कहा।

यह कटाक्ष था।

"नहीं," उसने जवाब दिया।

उसे यह एक तरह का अपशकुन लगता है जो छाया की तरह उस पर मँड़राता है। क्या नेहा उसे स्थानांतरित कर रही है?

"मै हँसी कर रही थी!" नेहा यह कहकर अपने काम में बिज़ी हो गई।

वह असमंजस में घिर जाता है। क्या प्यार ऐसी कुछ चीज़ है जो इच्छा पर निर्भर है। क्या प्यार तुलनात्मक हो गया है? या प्यार सुविधाभोगी है?

सुकन्या हैरान है। महीना हो गया है, उससे मुलाक़ात नहीं हुई। वह जानती है वह रोज़ अपने काम पर आता है। फिर उससे मिलना क्यों नहीं होता? वह उसकी शॉप नहीं जानती। पता करने से जान सकती थी परन्तु उसे देखना है, परखना है। वह अक्सर अपने ख़यालों में उसके कान में फुसफुसाकर कहती, "डरो नहीं--तुम बेशक हमें भुला दो, हम तुम्हें नहीं भुला सकते" वह सब कुछ बर्दाश्त करती है। यह उसकी यातना है कि जिसे वह किसी से भी शेयर नहीं करना चाहती। यहाँ तक सुकेश से भी।

उसने कभी इस तरह नहीं सोचा था कि वह उसे विस्मृत कर देगा! उसने उसे खोजने का निर्णय कर लिया। वह ख़ज़ाना के तीनों तलों में सिर्फ़ उस चेहरे को ढूँढ रही थी। अपने को पूरी तरह उसकी यादों से सराबोर किए। कब और कितनी बार इधर-उधर ग़ुजरी, उसे होश नहीं था। एक बार उसके जी में आया कि खोज छोड़ दी जाए।

अचानक वह अंजलि बुटीक में दिख गया। वह पूरी तरह खाली हो चुकी थी परन्तु उसे देखकर वह उसके एकदम सामने डमी की तरह खड़ी थी। जैसे उस शॉप में तीन डमी हों।

वह भौंचक होकर उसे निहारता ही रह गया। एक बार उसके जी में आया उसके पसीने से लथपथ साँवले चेहरे को चूम ले। परन्तु मैडम आ गई थीं और वह खड़ी-खड़ी उसके करतब देख रही थीं।

"तुम ढंग से मिल लो?" संदेह और अनिश्चय से उनके स्वर में तनाव उतर आया था।

वह अप्रत्याशित ढंग से हँसा। उस हँसी में एक विवश निरीहिता थी जो सुकेश के होठों पर फैल गई।

वह काउंटर से उठा और उसे लेकर दूर एकांत में आ गया।

वह उसे धो रही थी। जैसे रगड़-रगड़ कर वह गिलास धोती है। उसकी आवाज़ लहरों की मानिंद उठती थी, टकराती थी और फिर अंतहीन स्वरों में बिखर जाती थी और तब उसे लगा कि अब वह उसका सामना नहीं कर पाएगा। उस पर उसका खुद का नियन्त्रण नहीं रहा। उसने अपने-आपको मुक्त किया और उसके हवाले किया--कि वह सही है। ग़लती स्वीकारोक्ति ने उसे उससे मुक्त कर दिया।

एक बार जब वह आई, वह उसके बारे में नहीं सोच रहा था। वह मैडम अंजलि और सहकर्मी नेहा और अपने व्यस्त समय के विषय में उलझा था। ग्राहक कोई नहीं था, न मैडम थीं और नेहा कपड़ों में प्रेस करने में बिज़ी थी।

वह मेरे पास चली आई-बिलकुल पास, एकदम सामने। उसके पैरों पर घास और मिट्टी के तिनके और हवाई चप्पल अच्छी तरह चिपके हुए थे। पीले छींटदार सलवार-सूट में दुपट्टा गले से लिपटा था। पसीने से तर-बतर, थके चेहरे पर प्रश्नों की बेतरतीब लिस्ट चिपकी हुई थी।

"तुम--?" उसके मुँह से अनायास

निकला।

"हाँ, मैं---! कोई एतराज़?"

"नहीं, मेरा मतलब यह नहीं था।"

"मैं एक माह से इंतज़ार कर रही हूँ। तुम उधर आए ही नहीं।"

"नहीं, आया था, दो-तीन बार। तुम दिखी नहीं। न मन्दिर में न दुकान में? यदि दिखी तो बहुत बिज़ी।" उसने सफ़ाई दी।

"बस--!" वह हँस पड़ी और मैडम की सीट पर बैठ गई। जैसे कि वह उस बुटीक की मालकिन हो। वह डर रहा था कि कहीं मैडम ने देख लिया तो क्या होगा? नेहा ने भी इशारों से उसे मना किया परन्तु वह शब्दों से मना करने का साहस नहीं जुटा पाया। उसने परवाह नहीं की।

वे दोनों एक-दूसरे को पहचान रहे थे। नेहा अपने काम के साथ उन्हें भी देख़ रही थी। वह बे-धीरज थी।

"मै सिर्फ़ यह जानना चाहती हूँ कि तुमने क्या फ़ैसला लिया है?" उसने एक-एक शब्द पर ज़ोर देकर कहा। वह चुप रहा। वह क्या जवाब देता? उसे खुद मालूम नहीं था कि वह उसे चाहता है कि नहीं?

परन्तु वह उसके प्रति काफ़ी गम्भीर थी। वह उसे बेहद चाहने लगी थी और यह वह जानता था।

प्यार समीपता, निकटता और सततता से उत्पन्न हुआ भाव है न कि अचानक व्युत्पन्न हुआ आवेगात्मक आकर्षण। हम दुनिया में जाने कितने सुन्दर, आकर्षक और अच्छे लोगों से मिलते हैं परन्तु प्यार नहीं उपजता। कुछ समय बाद वह दृश्य-पटल से ओझल हो जाते हैं। वह यह अच्छी तरह समझती है कि जितना वह एक-दूसरे से मिलेंगे उतना ही उनके बीच प्यार पनपेगा। यदि उसको समय नहीं मिलता है तो वह समय, चाहत और निष्ठा दे सकती है, प्रतिउत्तर में उसे वही सब मिलेगा ही।

उसे डर है कि सुकेश की नौकरी उन दोनों को अलग कर देगी। उसे लगता है कि वह अपनी आशंका उस पर ज़ाहिर कर दे परन्तु वह घबरा जाती है कि उसे यह बहाना मिल जाएगा उससे न मिलने का। निःस्संदेह उसके लिए वह नौकरी तो नहीं छोड़ेगा? कितनी मुश्किल से उसने यह नौकरी पाई है। यह उसके ज़िन्दा रहने का आधार है। कहीं नौकरी की वजह से वह उसे ही न छोड़ दे!

अब वह अक्सर आने लगी थी। बेशक यह ध्यान रखती कि मैडम न हों। उसे नेहा बेहद नापसन्द करती थी। उसकी प्रत्येक आवक पर वह सुकेश को टोकती थी, "बग़ैर काम के यह लड़की क्यों आती है?---तुमसे क्या मतलब है इसका?--तुम उसे कैसे जानते हो?--" एक दिन उसने मुँह बिचका कर कहा, "कही प्यार-व्यार का चक्कर तो नहीं है?" उसकी तरफ़ से कोई उत्तर न मिलने पर उसने शिकायत करने की धमकी दी।

और फिर एक दिन नेहा ने उसकी शिकायत मैडम से कर दी। मैडम ने एक क्षण उसको सिर से पैर तक देखा और सख़्त हिदायत दी, "दोस्ती/प्यार यदि है, तो बाहर तक सीमित रखो, यहाँ तक फैलाने की ज़रूरत नहीं है।"

मैडम ने स्पष्ट और सख़्त लहजे में उसका आना और मिलना प्रतिबन्धित कर दिया, "तुम्हारे उससे सम्बन्ध कैसे हैं, मुझे डिटेल में नहीं जाना है परन्तु उसका किसी तरह का जुड़ाव अंजलि बुटीक के लिए नुकसानदेह है और तुम्हारे लिए भी। इसलिए चुनाव कर लो, या तो यह या तो वह।"

उनकी बात से उसे बहुत तकलीफ़ हुई, "यह तो ग़लत है!" उसने धीरे-से कहा परन्तु स्वर इतना धीमे नहीं था कि मैडम सुन न

सकें। वह सुनकर मुस्कुराईं और उन्होंने इस प्रतिक्रिया को तवज्जो नहीं दी और अपने काम में व्यस्त हो गईं। वह खो गया ताड़ना-प्रताड़ना, मान-अपमान, ज़िन्दगी-प्यार की उलझन और निर्णय-अनिर्णय की भूल-भुलैय्या में।

उसने सुकन्या को कुछ भी नहीं बताया था कि वह किस उलझन से गुज़र रहा है। आख़िर वह दिन आ पहुँचा जब उसे 'न' कहने पर मजबूर होना पड़ा था।

वह आ रही थी और बुटीक में सभी थे--।

वह बेहद पीड़ा में था परन्तु यह ज़रूरी था। उसके आने से पहले ही उसे रोकना होगा। वह तुरन्त-फुरत बाहर निकला और उसे शॉप में आने से काफ़ी पहले रोक लिया। मैडम और नेहा उसे बाहर निकलते देख रही थीं।

वह उसे लेकर अंडरग्राउंड के भीतर उस कोने में ले गया जहाँ पर अधिकांश दुकानें बन्द थीं और पूरी तरह धुँधलका छाया हुआ था।

"तुम यहाँ न आया करो।" उसने फुसफुसाकर कहा।

"क्यों---आख़िर क्यों--?" वह ताज्जुब में थी।

"किसी को भी तुम्हारा आना ठीक नहीं लगता है।"

"और तुम्हें। --?" उसने रुआँसे स्वर में पूछा।

"मेरी बात दीगर है, किन्तु---?" उस पर कातर दृष्टि डालते हुए कहा।

"फिर--?" उसकी आँखें उसके चेहरे की भाव-भंगिमा पढ़ने को आतुर थीं।

"हम मिलते रहेंगे परन्तु यहाँ नहीं।" उसने उसे आश्वस्त किया।

परन्तु वह उसकी बात का विश्वास नहीं कर पा रही थी। वह नाराज़गी को भींच रही थी। वह काँपने लगी थी। उसने कुंठित, निराश, हताश और उदास भाव के साथ मुँह पर कृत्रिम हँसी लाते हुए कहा, "ठीक है। --!"

यकायक, उसे लगा कि वह नेहा द्वारा अपदस्थ की जा रही है। वह वहाँ से निकलकर चली गई, प्रतिरोध के कोई भी शब्द बोले बग़ैर। सुकेश जड़वत खड़ा रह गया।

वह फिर नहीं आई। काफ़ी दिन बीत गए थे। वह उससे मिलने नहीं जा पाया था। वह जानता था कि वह प्रतीक्षारत होगी। उससे मिलने के लिए बेचैन होगी। वह उसे भूला नहीं था। वह उसकी याद में थी परन्तु उससे मिलने का कोई बहाना नहीं मिल रहा था। कई बार समय निकला परन्तु बेवजह रुक गया। उसकी अपनी व्यस्तताएँ थीं और प्रतिबन्ध दुधारी तलवार। मनुष्य आवश्यक कार्य पहले करता है और अन्य कार्य समय और परिस्थिति को देख-समझकर। वह आवश्यक नहीं थी परन्तु वह थी तो।

आज उसे तीसरी बार सैलरी मिली थी। दिन गुरुवार था। ख़ज़ाना क़रीब-क़रीब ख़ाली और बन्द था। इक्का-दुक्का दुकानों के अलावा सब कुछ शान्त और नीरव था। मैडम ने आज बुटीक को भी जल्दी बन्द कर दिया। मैडम और नेहा जा चुकी थीं।

शाम के पाँच बज रहे थे। वह अंजलि बुटीक के बोर्ड के नीचे बन्द शॉप में खड़ा था। उसे सैलरी ने भी अवसाद और उदासी से मुक्त नहीं किया था। अचानक वह उभरी एक चमक की तरह---उसने बहुत कुछ किया है। उसका बहुत कुछ उसके पास---कुछ तो लौटाया जा सकता है। आज मौक़ा है, समय है और वह भी है, जिसके जरिए उसकी पैठ हुई थी। --उसने अनुमान लगाया, सुकन्या के ठेले में उसने कम-से-कम बीस बार मुफ़्त में खाया होगा या खिलाया होगा। पचास गुणे बीस बराबर एक हजार। उसने एक हज़ार अलग किए और उसे

ऊपरी जेब में रखे।

फिर वह चल पड़ा उसके ठेले की तरफ़। उसकी आँखों में एक अजीब-सी तसल्ली थी। जैसे यह निर्णय स्वयं और उसे पूर्णतया संतुष्ट कर देगा।

आज साईं बाबा का दिन था। मन्दिर और ठेले में भीड़ थी। उसकी माँ और पिता ग्राहकों से निपट रहे थे। छोटे खा चुके स्थान पर गंदगी-सा कर रहा था। वह पीछे मालकिन की तरह गल्ले में बैठी थी।

उसने उसे देख लिया था परन्तु अनदेखा किया। उसे हल्का-सा आश्चर्य हुआ कि पहली बार है कि वह उसे उपेक्षित कर रही है। सुकेश पीछे उसकी तरफ़ जाकर पास खड़ा हो गया। वह बोली नहीं। उसके माँ-बाप और भाई उसे घूरने लगे और अन्य उसे ग़ौर से देखने लगे।

"यह तुम्हारे पैसे!" उसने अपनी शर्ट की ऊपरी जेब से पैसे निकाल कर उसके सामने किए।

उसे लगा कि वह मुस्कुरा रही है। वह उसे कुछ देर तक घूरती रही फिर बेरुख़ी से कहा, "किस बात के?"

"जो मैंने यहाँ बिना पैसे दिए खाया-पिया है। मैंने सारा हिसाब लगा लिया है। कम नहीं होंगे। फिर भी यदि कम है तो बताओ, मैं दे सकता हूँ।" वह जल्दी-जल्दी बोल गया जैसेकि जल्दी न बोला तो कह नहीं पाएगा।

"कैसी बात करते हो?" वह कुछ पल उसे देखती रही। उसकी आँखों में बड़े-बड़े आँसू थे। उन आँसुओं को लपटों में बदलने में देर न लगी। वह एकदम भभक उठी। ज्वालामुखी फट गया था। उसके मुँह से लावा गालियों के रूप में बहने लगा।

"भाग--हरामी--कुत्ते---हमारा प्यार पैसे से ख़रीदेगा।--?" उसने उसके पैसे उसके मुँह पर फेंक दिए। गुस्से में उसका बदन काँपने लगा था। सुकेश हतप्रभ खड़ा का खड़ा रह गया, "तुम जाओगे नहीं?" उसने ख़ूँख़ार जंगली बिल्ली की तरह चीख़कर कहा।

वह स्तब्ध स्पन्दनहीन था। एक मरते हुए जानवर की तरह जिसमें साँस अब भी बाक़ी हो।

"कमीना, लुच्चा, मुझे ख़रीदेगा।? उसकी गालियाँ रुक नहीं रही थीं। उसके साथ ही वह स्टूल से उतर कर उसकी तरफ़ मारने को लपकी। उसके वहाँ पहुँचने के पूर्व ही उसका पिता और माँ पहुँच गए और उसे धकेल कर गिरा दिया। गालियाँ--थप्पड़ और लात-घूसे--।

बुरी तरह अपमानित-प्रताड़ित सुकेश ने कोई प्रतिरोध नहीं किया, आश्चर्य और पछतावे में वह पूरी तरह डूब गया था।

ननकू ने उसे घसीटते हुए उठाया और गिरे हुए रुपये उसकी जेब में रखे और धकियाते हुए खदेड़ दिया। जैसे कि वह कोई पशु हो।

एक समवेत हँसी वहाँ उपस्थित ग्राहकों की गूँजी। उनकी नज़र में उसने लड़की को छेड़ा था। लड़की ने उसकी तरफ़ अपनी पीठ कर ली थी।

वह कुछ देर संज्ञाशून्य चलता गया और फिर एक चबूतरे पर बैठ गया। उसने एक भरपूर साँस ली--एक बार--दो बार---उसे लगा कि वह ज़िन्दा है। एक पीड़ा होती है जो शरीर से ज़्यादा मन में थी। ---- उसने सोचा, काश! एक सिगरेट पी सकता!---वह बंगला बाज़ार आ गया था। उसे आश्चर्य होता है कि इतने दिनों बीत जाने के बाद भी वह उसे जान नहीं पाया। उसे लगा कि सब कुछ खो गया है। क्या यही उसका चाल-चरित्र और चेहरा है?

चेतनाशून्य वह घर, गाँव वापस लौट रहा है। उसे अपने पर कोई नियन्त्रण नहीं रहा था। जैसे वह मुक्त हो। ❑

कहानी



विपिन चौधरी

भूस्खलन

बीरमती जानती है कि दिन ढलने के साथ ही उसका दिल क्यों डूबने लगता है। इस वक़्त उसी डूबे हुए दिल से वह चाय बना रही है और उधर बैठक में हरजीत को बीरमती का और ओबरे में बैठी सास को चाय का बेसब्री से इंतज़ार है।

कुछ देर पहले ही बैठक के एक कोने में अपना शयनकक्ष बनाने की ज़िद पर अड़े हुए अपने पति हरजीत के पास जाने के लिए ओबरे में अपनी सास के साथ वाली चारपाई पर लेटी हुई बीरमती उठ कर बैठक में जाने को ही थी कि बग़ल की खाट पर सोई हुई उसकी सास के पाँव में अचानक से ऐंठन उठ गई जिसे देख बीरमती सास की खाट के पायताने पर बैठ उनके पाँव दबाने लगी। कुछ देर बाद जब पाँव की स्थिति सामान्य हो गई तब सास की तरफ़ से चाय की फ़रमाइश हुई।

बीरमती जानती है कि आज एक बार फिर से उसे हरजीत के पास जाने से देरी हो जाएगी और पहले की तरह ही उलाहने सुनने को मिलेंगे।

विरासत में कई एकड़ पुश्तैनी ज़मीन हाथ लगने के आसार हों तो शायद सभी लड़के हरजीत जैसे ही ग़ैर-ज़िम्मेदार हो जाया करते हैं। यह सच्चाई चार बड़ी बहनों के सबसे छोटे और एकमात्र भाई हरजीत पर पूरी तरह से खरी उतरती है। कई बीघे ज़मीन का वारिस होने और तहसीलदार पिता के ओहदे के कारण उसकी ज़िन्दगी ठाठ से बीत रही है। दो महीने पहले दूर के गाँव के एक खाते-पीते घर की लड़की बीरमती से उसका ब्याह भी हो गया है।

नई बहू बीरमती के दादा, वर के हिस्से में आने वाली ज़मीन और उसके पिता के तहसीलदार के पद पर होने से काफ़ी प्रसन्न थे मगर बीरमती के पिता के लिए इस रिश्ते में दो अड़चने थीं। एक तो हरजीत बेरोज़गार था दूसरा देखने-भालने में भी अनाकर्षक ही ठहरता था।

वहीं बीरमती से उसकी पसन्द-नापसन्द जानने का तो कोई सवाल ही नहीं था। यह वह दौर था जब ब्याह तय करने का काम बड़े-बुज़ुर्गों का माना जाता था और बच्चे ख़ासकर, लड़कियाँ बड़ों की पसन्द को चुपचाप स्वीकार कर लिया करती थीं।

ससुराल आने के बाद बीरमती ने देखा कि उसके पति का मुख्य व्यवसाय पूरे दिन खाट तोड़ने और ऊँची फेंकने का ही है। दोनों हाथों सिर के नीचे रख एक टाँग के ऊपर दूसरी टाँग रख लेटे रहने वाले हरजीत के सारे नाज़-नख़रे

सम्पर्क : *ई-मेल : choudharyvipin131@gmail.com*

उसकी माँ शान्ति बड़े लाड़ से उठाया करती। कुछ माँ के लाड़-प्यार और कुछ अपनी नाजुक तबीयत के चलते ही हरजीत ने स्नातक में स्वर्ण पदक पाने के बावजूद आगे की पढ़ाई जारी नहीं रखी और न ही कभी खेती-बाड़ी में दिलचस्पी दिखाई। खाते-पीते घर का एकलौता बेटा होने के कारण उस पर काम करने का कोई दबाव भी नहीं था।

दो बरस पहले पास के शहर में अकाउंटेंट की अच्छी-भली नौकरी भी उसने अपनी माँ के कहने पर छोड़ दी थी। नौकरी के दौरान वह कई बार बीमार पड़ा तो उसकी माँ को अपने बेटे के स्वास्थ्य और उसकी दमे की पुरानी बीमारी के ज़ोर पकड़ने की चिन्ता होने लगी थी। माँ ने हरजीत को तुरन्त गाँव बुला लिया। हालाँकि हरजीत के पिता को उसका इस तरह नौकरी छोड़ कर गाँव चले आना क़तई पसन्द नहीं आया था पर अपनी पत्नी के आगे उनकी एक भी नहीं चली। हरजीत के पिता लम्बे-तगड़े और गोरे रंग के थे और उनका बेटा हरजीत गाँव के हिसाब से नाटा और स्याह रंग का था जिसकी वजह से अक्सर गाँव की कई औरतों के हैरत का कारण भी था जो शान्ति का ज़िक्र होते ही दबी ज़ुबान से कह उठती थीं, "बेरा नी शान्ति नै यो किसका बालक जाम दिया काला-टीटणा सा।" निरक्षर ग्रामीणों की नज़र में राज्यभर में हरजीत के स्नातक में प्रथम आने की कोई क़ीमत नहीं थी। हाँ, जब से हरजीत ने वैदगिरी में अपना हाथ आज़माना शुरू किया है तब से गाँव वालों में उसकी पूछ होने लगी है, इसी से उत्साहित होकर हरजीत ने अपनी चारपाई के बग़ल वाली दीवार में चिनी एक अलमारी में देसी नुस्ख़ों, जड़ी-बूटियों, घरेलू इलाज से सम्बन्धित दर्जनों किताबों और दूसरी अलमारी जड़ी-बूटियों और चूरन से भर दी है।

नई बहू बीरमती की कहानी दूसरी है। उसके हिस्से तो खाना-पीना, बर्तन-चौका ही आया है। बारहवीं के बाद कॉलेज जाने के उसके सपने को शादी ने निगल लिया था। घर के सारे काम निपटाकर खाट पर लेटी हुई बीरमती सोचने लगती, कैसे वह अपने घर-परिवार, सखियों को छोड़ कर कोसों दूर गाँव की इस हवेली में एकदम अजनबी लोगों के बीच चली आई। सच कुछ दिन तो उसका मन यहाँ बिल्कुल नहीं लगा। अब धीरे-धीरे यह हवेली और यहाँ की दिनचर्या उसकी आदत में शुमार होने लगी और उसे शादी के बाद अपने ससुराल आकर ही पता चला कि अपने प्रियतम से लुक-छिपकर मिलने वाली अभिसारिकाओं को कितनी बाधाओं को पार करना होता है। हक़ीक़त में ऐसा करना इतना आसान और हसीन नहीं है जैसा रोमांटिक फ़िल्मों या नॉवेल को पढ़कर उसे अनुभव होता था।

शादी के बाद बीरमती जब पहली बार अपने मायके आई तो उसकी सहेलियों ने अपनी आदतों के अनुसार खोद-खोद कर उससे अपने पति से प्रथम मिलन के क़िस्से पूछने शुरू कर दिए। जब उसने बताया कि उसे रात होते ही डर लगने लगता है, उसका पति छत पर ख़ाली कमरे होते हुए भी उन्हें अपना बेडरूम नहीं बनाता और अपनी बड़ी की बैठक के एक किनारे पर ही वह वह उससे मिलती है तब सभी लड़कियों को बड़ी हैरानी हुई थी।

सच में बीरमती कुछ फ़लाँग की दूरी पर मौजूद अपने ही पति के पास जाने के रोज़ के सफ़र को याद कर सिहर उठती है। हर रात की तरह बीरमती को जब पूरी तरह से विश्वास हो जाता है कि चाय पीकर सास इत्मीनान की नींद सो गई हैं तब वह दबे पाँव उठकर ओबरे का दरवाज़ा हौले से ढाल कर बैठक में लेटे हुए हरजीत के पास चली जाती। बैठक में एक-एक हाथ की दूरी पर लगभग तीस के क़रीब

बिछी चारपाइयों के बीच से रास्ता बनाते हुए ठीक कोने में दीवार के क़रीब बिछी हरजीत की चारपाई तक पहुँचते ही जैसे उसकी साँस में साँस आती।

इन्हीं सब बातों में खोई बीरमती को एहसास हुआ कि काफ़ी देर हो गई है। उसने दाईं तरफ़ गर्दन कर अपनी खाट के पास ही सोई हुई सास की तरफ़ देखा जो पीठ के बल सीधी लेटी हुई ख़र्राटे ले रही थी।

उधर बैठक में हरजीत भी अपने चिरपरिचित अंदाज़ में अधलेटा हो अपनी कोहनी मोड़कर हथेलियों को अपने चेहरे पर टिकाकर बीरमती की ही बाट जोह रहा था।

इसी तरह रोज़ अँधेरे को टटोल-टटोल कर बीरमती, हरजीत के पास पहुँची। हर रोज़ घुप्प अँधेरे में हरजीत को अधलेटा हुआ पाया।

शाम ढलते ही बीरमती की सास एक बड़ा-सा, दीया जला कर आँगन के आले में रख दिया करती जो देर साँझ तक रौशनी देता रहता, सोने के समय तक वह भी बुझ चुका होता। शाम के सात बजते ही घर का खाना-पीना निपटा लेने, बर्तन साफ़ कर, हाथ-मुँह धोने के बाद बीरमती कुछ समय तक अपनी सास के पाँव दबाती, फिर कुछ देर अपनी कमर सीधी करने के लिए खाट पर लेट जाती। जब उसे लगता कि उसकी सास सो गई है तब वह अपनी सास पर नज़र टिकाते हुए सावधानी से उठती और सिरहाने रखे अपने दुपट्टे को गले में डालकर धीमे क़दमों से ओबरे के दरवाज़े से होते हुए बैठक में चली जाती। हरजीत की चारपाई के पायताने बैठने के काफ़ी देर बाद भी उसके भीतर धुकधुकी बनी रहती और वापस ओबरे में अपनी चारपाई पर लौटते हुए फिर वही धुकधुकी।

जिस कमरे में बीरमती और उसकी सास सोया करती हैं उसका एक दरवाज़ा पिछले आँगन में और एक दरवाज़ा बैठक में खुलता है। एक दिन हुआ यह कि एक रोज़ कुछ ज़्यादा ही थके होने की वजह से सास के पाँव दबाते-दबाते बीरमती को झपकी आ गई और बेसुध होकर वह अपनी सास की चारपाई पर ही एक तरफ़ लुढ़क गई। सुबह मुँडेर पर मोर के 'पिया-ओ' या 'मिया-ओ' की आवाज़ के साथ ही उसकी नींद टूटी। बीरमती ने अपने-आप को सास की चारपाई पर लेटे हुए पाया तो उसे बड़ी शर्म आई और तो और गहरी नींद में सोई सास को भी बीरमती की मौजूदगी का अहसास नहीं हुआ। बीरमती को हरजीत का ख़याल आया जो उसका इंतज़ार करते-करते ही सो गया था। अगले दिन हरजीत, यह मौक़ा ढूँढता रहा कि कब बीरमती अकेली हो और कब वो उससे रात को बैठक में न आने का कारण पूछे, मगर बीरमती भी कम नहीं थी, वह पूरे दिन अकेली होने से बचती रही क्योंकि वह मन-ही-मन जानती थी कि रात को तो उसे हरजीत की अच्छी-ख़ासी डाँट सुननी ही पड़ेगी, कम-से-कम दिन तो सही-सलामत गुज़र जाए। हुआ भी ठीक वही, रात को बीरमती, हरजीत की चारपाई के क़रीब पहुँची ही थी कि हरजीत ने ग़ुस्सा दिखाते हुए उसकी चोटी खींच ली, बीरमती की हल्की-सी चीख़ निकलने को हुई ही थी कि हरजीत ने उसके मुँह पर अपनी हथेली रख दी। जब बीरमती ने बीती रात अपने बेहद थके होने के कारण सास के पाँव दबाते-दबाते ही सो जाने की बात बताई तो हरजीत ने उसकी बात पर विश्वास ही नहीं किया। बीरमती ने उसे बहुत मनाया तब कहीं जाकर वह माना।

आगे से कभी दोबारा ऐसा न होने की शर्त पर हरजीत मान तो गया पर वह काफ़ी देर तक बीरमती से ख़फ़ा रहा। बीरमती को मन-ही-मन हरजीत का व्यवहार बहुत ख़राब लगा पर वह बोली कुछ नहीं। बस यही सोचती रही

कि हरजीत को क्या पता, कैसे हर रोज़ वह डर का एक दरिया पार करके उसके पास आती है। सास के जाग जाने का डर कम भयानक नहीं होता पर हरजीत को इससे क्या!

सब ठीक-ठाक ही चल रहा था मगर मिलन की इस दैनिक-लय में एक दिन अवरोध उत्पन्न हुआ, दरअसल बीरमती की सास को सोने से पहले चाय पीने की आदत थी। बीरमती रोज़ चाय को ठण्डी करने के लिए बड़े से बेले में डाल लेती थी और चाय पीने के बाद ख़ाली बेले या कटोरी को अपनी खाट के नीचे सरका देती थी। एक दिन सास ने ख़ाली कटोरी चारपाई के नीचे न सरका कर चारपाई के पाए के पास ही रख दी थी। इत्तेफ़ाक की बात थी कि उसी दिन जैसे ही बीरमती ने अपना पाँव चारपाई से नीचे रखा वैसे ही उसका पाँव उस कटोरी के किनारे पर टिक गया और इसी वजह से उसके शरीर का संतुलन बिगड़ गया, वह धम से चारपाई पर सोई हुई अपनी सास पर जा गिरी। हल्की चीख़ के साथ सास चौंकते हुए उठी। बीरमती ने सकुचाते हुए अपनी सास से माफ़ी माँगी, "बारणे जाऊँ थीं", बीरमती ने अपनी तरफ़ से थोड़ी सफ़ाई पेश करते हुए कहा। सास ने बीरमती की इस सफ़ाई को ख़ासे सन्देह के साथ सुन तो लिया मगर उसके मन में कुछ खटका-सा बना रह गया। उस दिन के बाद शा न्ति सोते समय पहले की तरह चित्त नहीं सोती थी। वह नींद में कई बार जग जाती और फिर इधर-उधर देखकर चौकन्नी होकर सोने की कोशिश करती। पहले जहाँ पूरी रात वह एक भी करवट नहीं लेती थी वहीं अब वह हर दस मिनट में करवट लेने लगी थी।

उधर सास के बग़ल में बिछी खाट पर सोई बीरमती को सास की नींद की आदतों में आए बदलावों से ख़ासा भय लगने लगा। अक्सर उसे लगता उसकी सास आँख बन्द कर सोने का अभिनय कर रही है और जैसे ही वह उठकर हरजीत के पास जाने लगेगी उसी समय वह उसे धर दबोचेगी। इस डर ने बीरमती की नींद उड़ा दी थी। बीरमती उस रात बैठक में न जा सकी और इसी कश्मकश में करवटें बदलते हुए दो रातें और बीत गईं।

आख़िर तीसरी रात बीरमती ने हिम्मत करते हुए दबे पाँव उठकर जैसे ही बैठक का दरवाज़ा खोला वैसे ही कमबख़्त दरवाज़ा चूँ की ऐसी बेसुरी आवाज़ के साथ खुला कि उस आवाज़ ने उसकी सास की नींद में ख़लल डाल ही दिया, वह कुनमुनाते हुए उठी और दरवाज़े के सामने बाहर पायदान के क़रीब खड़ी बीरमती का हाथ पकड़ लिया और वह कुछ तेज़ आवाज़ में बोली—

"आधी रात न कित जा सै।"

अचानक से इस तरह झटके से अपनी कलाई के पकड़े जाने की हरकत से बीरमती चिढ़ गई। ऊपर से लेकर नीचे तक जैसे ग़ुस्से का साँप कुलबुलाने लगा। अपनी सास की तरफ़ सीधी नज़र से देखने से परहेज़ करने वाली बीरमती अपनी सास को लगातार घूर रही थी, ग़ुस्से पर काबू पाते हुए कुछ ऊँची आवाज़ में उसने जवाब दिया—

"अपने पति धोरे जाऊ थीं।"

"क्यों"? सास ने भी उसी तल्ख़ी और अकड़ के साथ पूछा।

"क्यों के उस सत्ती ब्याह होया सै मेरा, लुगाई सूँ उसकी।"

"बेशर्म रांड।"

यह कहते हुए सास ने अभी तक बीरमती के पकड़े हुए हाथ को ज़ोर का झटका देकर छोड़ दिया, लम्बा-सा घूँघट निकालने और हरदम नीची नज़रों से बात करने वाली अपनी बहू का इस तरह अकड़ कर सामने बोलना सास को बिल्कुल रास नहीं आया।

"चाल सो जा बोलबाली।"

इतनी देर में बीरमती भी कुछ ढीली हो गई थी।

उसके पास सास के सामने अधिक देर तक खड़ी होने की हिम्मत नहीं बची थी। वह मुड़ कर धीमे क़दमों से अपनी चारपाई तक पहुँची और चुपचाप चादर ओढ़ कर सो गई।

उधर पता नहीं हरजीत आधी रात में हुई सास-बहू की यह तना-तनी सुन पाया या नहीं। बीरमती को यह कभी नहीं पता चला पर वह जानती थी हरजीत ने यह सब सुना भी होगा तो भी वह अपनी चारपाई पर चादर ओढ़ कर दुबक कर सोने का अभिनय करने लगा होगा। इन दो महीनों में वह अपने पति के डरपोक स्वभाव से अच्छी तरह से परिचित हो गई है। 'माँ का लाड़ला बेटा, हर बात में अपनी माँ का ही पक्ष लेगा और उसे ही क़सूरवार ठहरा दिया जाएगा' इस बात को बीरमती अच्छी तरह से जान चुकी थी।

संयोग से अगले ही दिन बीरमती को मायके लिवाने के लिए उसके पिता आ पहुँचे थे। भारी मन से हरजीत से कुछ बात किए बिना बीरमती अपने पिता के साथ चली गई। कई दिनों तक वह मायके में भी अनमनी बनी रही। किसी काम में उसका मन नहीं लग पाया।

बीरमती को अपने मायके आए पूरा एक महीना हो गया था मगर ससुराल वाले जैसे उसे भूल ही गए थे। बीरमती रोज़ इंतज़ार करती मगर वापस ससुराल ले जाने के लिए कोई नहीं आया।

आख़िर पन्द्रह दिन के और इंतज़ार के बाद बीरमती को अपने छोटे भाई के साथ ससुराल विदा कर दिया गया।

ससुराल आने पर बीरमती को लगा जैसे वह किसी दूसरे घर में आ गई है। यह पहली वाली आबोहवा नहीं थी। उसकी सास हरदम तना हुआ चेहरा बनाए हुए रहती थी। हरजीत भी कुछ अलग ही ऐंठ में दिखाई दे रहा था।

बैठक में एक ब्लैक एण्ड व्हाइट टी.वी. लग गया था जिसकी आवाज़ पूरी हवेली में गूँज रही थी। दोपहर के समय बीरमती ने कुछ बच्चों को भी अपनी बैठक में टी.वी. देखते हुए देखा जो उसने पहले नहीं देखा था। साँय-साँय करती बैठक में बच्चों की शरारतों की आवाज़ें सुनकर बीरमती खुश हुई। बीरमती को इस बदले हुए दमघुटे में रहते हुए कुछ दिन ही बीते थे कि एक सच्चाई ने उसके पाँव तले ज़मीन ही खिसका दी।

बीरमती जैसे अपने ससुराल के पहले दिन में वापस लौट गई, उसे याद आया कि मुँह-दिखाई के दिन घूँघट उठाकर देखते हुए गाँव की कई स्त्रियों ने उसके कमसिन चेहरे को देखकर कैसे तरस खाने वाले भाव बनाए थे, जैसे मन-ही-मन कह रही हों—

'ओह! बेचारी नई बहू!'

जैसे बस इस भेद का खुलना ही काफ़ी नहीं था, बीरमती पर दूसरा व्रजपात उस समय हुआ जब उसे पता चला कि हरजीत और चन्द्रो भाभी के सम्बन्धों को किसी दूसरे का नहीं बल्कि खुद उसकी सास शान्ति का शह मिली हुई है।

फिर तो इन दो सालों में घटे कितने ही क़िस्से बीरमती की आँखों के सामने घूम गए जो उसे नीचा दिखाने के लिए ही अंजाम दिए गए थे। हरजीत का भेद तो स्याह था ही मगर उसकी सास जो उसके साथ कर रही थी, उसकी तो कोई कल्पना भी नहीं कर सकता था क्योंकि जो डर पहली रात से बीरमती के साथ-साथ परछाई की तरह लगा हुआ था उस कृत्रिम डर का निर्माण भी उसकी सास ने ही किया था। ओह, बीरमती की आँखों के आगे अँधेरा छा गया। वह मन-ही-मन ईश्वर से ऐसे भूस्खलन को सह सकने की ताक़त देने की प्रार्थना करने लगी। ❑

झूठा अहंकार : राजेन्द्र दानी



उसकी एक तस्वीर
छुपा कर
रख ली थी मैंने
किसी तिजोरी में नहीं
किसी आलमारी में नहीं
कोई संदूक भी नहीं था
जो वहाँ रख लेता

वह तस्वीर
न जाने कैसे
मेरे भीतर
सुरक्षित थी

मेरा
बहुत बुरा वक़्त
चल रहा था

कहते हैं
बुरे वक़्त में
कविता साथ देती है
मैं कहता
स्त्री भी साथ देती है

मैंने यह सोचकर भी
छुपाया था उसे
कि वक़्त रहते
उस पर लिखूँगा
एक बेशक़ीमती
प्रेम कविता

पर एक अंतराल के बाद
उसकी तस्वीर
मैंने निकाली
और बहुत देर तक
देखता रहा

क्या देखता हूँ कि
मेरी कविता में
उतनी जगह नहीं थी
जितनी उस तस्वीर को
ज़रूरत थी

वहाँ मासूमियत थी
गहरा ऊष्मायुक्त प्रेम था
ममता की कमी नहीं थी
वात्सल्य भी भरपूर था
गिनती में न आएँ
इतने गुण थे
मुझे हताशा हुई
मैं उसे
उसकी तस्वीर के बदले
एक कविता भी
नहीं दे पा रहा था

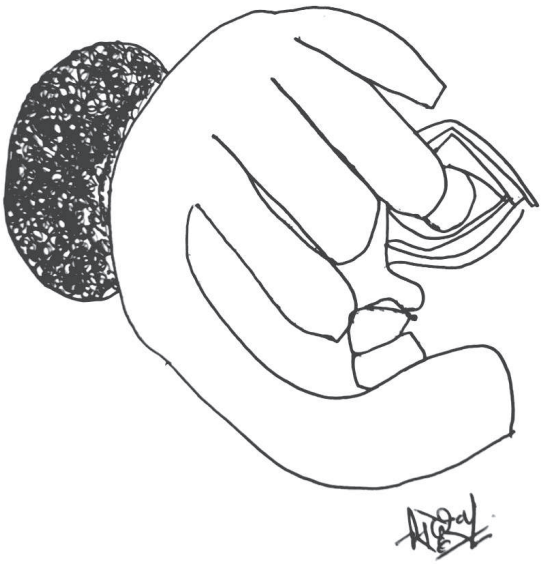
अपनी असफलता पर ही

सम्पर्क *: ई-मेल : rajendradani003@gmail.com*

मैं देख पाया कि
मेरे पास क्या था
एक पुरुष के झूठे
अहंकार के सिवाय

मैं पुरुष होने पर
शर्मिंदा था।

****



अनावरण

बरस-दर-बरस
गुज़र रहे थे उसके साथ रहते
मेरा रख-रखाव अब मेरा नहीं था
मेरे स्वाद में बेहतरीन बदलाव था
घर में उजाला बढ़ता जा रहा था
इसलिए कुछ भी
रहस्यमय नहीं था
पर लगता था
मैं लौकिक-अलौकिक के विश्वास से परे था
क्यों रहस्यमय नहीं था
के रहस्य को
समझना चाहता था

मेरी समझ के लिए
उसके अनगिनत इशारे थे
जो कभी दिखे नहीं
तब भी जब मेरी नेत्र ज्योति
मैली नहीं हुई थी

ना पहचानी उस मलीनता के
इस दौर में
मुझे न जाने एक दिन
क्या हुआ

अचानक मैंने कहा
मैं तुमसे
बहुत-बहुत प्यार करता हूँ

उसके साँवले चेहरे पर
एक तीव्र मुस्कान उभरी
फिर उसने कहा
मैं जानती हूँ तुम मुझे
कितना
प्यार करते हो
मैं जितना तुमसे नहीं करती

बेहद सरलता से कहे
उसके इस झूठ को सुन
मैं दंग रह गया

मैं भूलता नहीं कभी
मेरे रहस्य का वह
बहुत ख़ूबसूरत अनावरण था। ❑

प्रकाश : योगेश ध्यानी



मेरे कमरे में मेरे मनमुताबिक़ है प्रकाश
मद्धम, तीव्र या अँधेरे की स्थिति....
सब सम्भव है
जैसा चाहूँ वैसा हो सकता है रिमोट से
कमरे का उजाला
बत्ती के चले जाने की सूरत में जनरेटर का
विकल्प है
मेरे और उजाले के बीच किसी दूसरे का
हस्तक्षेप नहीं है

हवा, परिवेश, उजाला और जगह-सब कुछ
इतना सुविधायुक्त है कि
सुकून की निरन्तर चाह रखने वाले मुझ जैसे
व्यक्ति को
सैद्धांतिक रूप से जाम कर देनी चाहिए वह
खिड़की
जो दुनिया की ख़राबियों की तरफ़ खुलती है

फिर भी कुछ-कुछ दिनों के अंतराल में मैं
खोलता हूँ उसे
क्या देखना चाहता हूँ,
ठीक-ठीक कभी स्पष्ट नहीं होता
शायद बहुत ऊँचाई से नीचे शहर को अपनी
गति से चलता-फिरता देखना चाहता हूँ
उसकी चहल-पहल में शामिल हुए बिना

आश्वस्त होना चाहता हूँ कि सब है ठीक
अनजान लोगों के सन्तोष और हँसी से भरे
चेहरों से भी फूटता है कोई प्रकाश जिसे मैं
देखना चाहता हूँ
और जिसकी पूर्ति
मेरे कमरे का उजाला क़तई नहीं कर
सकता..।

****

थोड़ा ठीक है

थोड़ा ठीक है
इतना भर कि लत न लगे
मैंने सुना कई लोगों से
कभी-कभी तो नशा छोड़ने अस्पताल गए
मरीज़ से
डाक्टर को कहते सुना

ठीक की मात्रा किसी के पास नहीं थी
सबके पास अपना पैमाना था
सब उसी से उड़ेलते थे

सम्पर्क *: ई-मेल : yogeshdhyani85@gmail.com*

मन-मुताबिक़ व्यसन

थोड़ा होना ठीक है, मैंने सोचा

और मैं हुआ
थोड़ा दम्भी,
थोड़ा लोभी,
थोड़ा स्वार्थी

थोड़ी-थोड़ी चीज़ों के लिए
थोड़ा बदल जाने में नहीं दिखी मुझे कुछ बुराई
मैंने थोड़ी-सी दुनिया बनाई थोड़ी ढहाई

थोड़ी-सी चाह के लिए मैं हर बार थोड़ा झुका
एक दिन मेरा सिर मेरे जूतों से जा लगा
पता नहीं कब हो गई
मेरे थोड़े की माप इतनी बड़ी

थोड़ी-थोड़ी मात्रा में इतनी चीज़ों ने घेर ली
मेरे भीतर की जगह
कि एक दिन भीतर के मनुष्य को
बाहर होना पड़ा.....।

****

ऐसे चलो

एक नवजात को वक्ष पर लगाए पैदल चल
रही स्त्री दुनिया से कहना चाहती है
ऐसे चलो कि इसको न लगे ठेस

सालों से महीने में एक बार
बैंक से अपनी पेंशन लेने आने वाला
एक बुज़ुर्ग
कहना चाहता है लोगों से

ऐसे चलो कि टूटे नहीं लाठी पर झुकी मेरी रीढ़

सड़क पर पैदल चल रहा आदमी
तेज़ गाड़ियों से कहना चाहता है
पहले ही बहुत किनारे आ चुका हूँ मैं
और हटा तो गिर जाऊँगा नीचे नदी में
बहकर लुप्त हो जाऊँगा तुम्हारी सभ्यता से
ऐसे चलो कि कम-से-कम कुचलने से बचा
रह सकूँ

दुनिया चल रही है अपनी तरह
'हटो, आगे बढ़ो, रास्ते में रोड़ा मत बनो'
जैसे उद्घोषों के साथ
समय पर न पहुँचने से कम हो जाएगा
मेरा मुनाफ़ा

तुम सब अपना बीमा करवा लो
यह दुनिया अब सिर्फ़ आँकड़ा है, व्यापार है
कितने मरे से ज़्यादा बड़ा प्रश्न है कितने का
घाटा हुआ

व्यापार का एक ही उसूल है
ऐसे चलो कि तुम्हारा घाटा न हो.....। ❑

ग़ज़लें : विपिन जैन



(एक)

दिन न था मेरा नहीं थी रात मेरी
कौन सुनता फिर ज़रा-सी बात मेरी
एक सच जो उम्रभर पाला था मैंने
बन ना पाया आख़िरी सौग़ात मेरी
फ़ैसला फिर तो तेरा कुछ और होता
पैरवी करते अगर हालात मेरी
मैं नहीं ये जानता था मुझसे पहले
साथ में मेरे चलेगी ज़ात मेरी
जो कहा था रात के कानों में मैंने
सुन सका ना दिन कभी वो बात मेरी
मैं मिला हूँ जब यहाँ पर ज़िन्दगी से
बस वहीं से मान लो शुरुआत मेरी
देखकर भी वो मुझे न देखा पाया
नापती नज़रे लगी औक़ात मेरी
जब तेरी यादों के जुगनू जगमगाए
साथ यादों की चली बारात मेरी
एक टूटी झोंपड़ी थी बस सहारा
ले गई वो भी बहा बरसात मेरी।

(दो)

हुआ देर से पर हुआ तो लगे
तेरा फ़ैसला, फ़ैसला तो लगे
मिला जो मुझे वो कहीं कम नहीं
मगर वो मुझे कुछ मेरा तो लगे
तू मेरा था मैं तेरा कभी
यह अहसास तुझमें भरा तो लगे
गुज़र कर गई जो यहाँ से हवा
थमी हैं कहाँ कुछ पता तो लगे
नए रास्तों का नहीं डर मुझे
नया रास्ता, रास्ता तो लगे
हिले कोई पत्ता कहीं तो कभी
कोई पास आती सदा तो लगे
अगर देख ले तू भरी आँख से
ये जामे खुशी कुछ भरा तो लगे
मिटाओ न सब कुछ पुराना अभी
जो देखो कभी कुछ बचा तो लगे
न ज़्यादा सही फूल की ज़िन्दगी
मगर डाल पर वो खिला तो लगे।

(तीन)

मुश्किल है ये कहना कि कुछ मुश्किल नहीं
रहा वो आरज़ू नहीं रही वो दिन नहीं रहा
आसानियों में मिल गई जब राह जीने की
दुश्वारियों का रास्ता मंज़िल नहीं रहा
अपनी समझ लगने लगी इतनी बड़ी हमें
उसमें किसी का मश्वरा शामिल नहीं रहा
नज़रें उठाकर देख तो आकाश की तरफ़
कैसे कहेगा तू कि वो झिलमिल नहीं रहा
बातें ही बातें थीं हमारे पास भी कभी
अब बात कहने का सिरा भी मिल नहीं रहा
आती नहीं दिल से तेरे कोई सदा मुझे
क्या दिल मेरा एतबार के क़ाबिल नहीं रहा
कैसे किनारा फिर मुझे मिलता कभी कोई
जब तू मेरी उम्मीद का साहिल नहीं रहा
हम दौड़ते ही रह गए पीछे उसी के बस
इस ज़िन्दगी में जो हमें हासिल नहीं रहा
जिस क़त्ल का इल्ज़ाम अँधेरों के सिर गया
क्या रोशनी का हाथ उसमें शामिल नहीं रहा। ❑

***सम्पर्क** : ई-मेल : vipinkrjain54@gmail.com*



साहित्य के बग़ैर समाज की पहचान नामुमकिन

(संस्कृतिकर्मी ***के. श्रीनिवासराव*** *से* ***प्राची*** *की बातचीत)*

के श्रीनिवासराव आँध्र प्रदेश के कृष्णा ज़िले के तेलुगुभाषी परिवार में से हैं। इन्होंने अंग्रेज़ी साहित्य में एम.ए. कर गिरीश कर्नाड के नाटकों पर पी-एच.डी. किया है। हाल ही में इनकी एक किताब 'मिथ, प्लेज़ एंड गिरीश कर्नाड' अंग्रेज़ी में छपी है और अब हिन्दी में आ रही है 'भारतीय साहित्य और संस्कृति', जिसमें समय-समय पर लिखे-पढ़े गए आलेख संग्रहीत हैं। श्रीनिवासराव पहले साहित्य अकादेमी के क्षेत्रीय कार्यालय, मुम्बई से जुड़े और फिर कार्यक्रम अधिकारी होकर दिल्ली आ गए। सन् 2012 में इन्हें साहित्य अकादेमी के सचिव पद की ज़िम्मेदारी मिली, जिसे ये सफलतापूर्वक निभा रहे हैं। प्रस्तुत है उन्मेष महोत्सव, युवा साहित्य और हिन्दी के भविष्य पर श्री राव से हुई बातचीत।



प्रश्न : कुछ समय पहले 'उन्मेष' नाम से साहित्य अकादेमी का शिमला में देश-विदेश के साहित्यकारों का बहुत बड़ा महोत्सव हुआ। इससे पहले इतने साहित्यकारों का समागम होते देश ने कभी नहीं देखा। इसके पीछे आपका मक़सद क्या था, कैसी प्रतिक्रिया मिली?

उत्तर : इस कार्यक्रम में शामिल होने के लिए बड़ी संख्या में भारत और एशिया के देशों से साहित्यकार और संस्कृतिकर्मी शिमला आए। इस तरह के और भी कई बड़े महोत्सव हैं, जिसमें ऐसा होता है, परन्तु इतने बड़े पैमाने पर लोग उपस्थित कम ही होते हैं। इसमें संस्कृति के दूसरे संकायों के लोग भी शामिल रहे, राजनेता भी रहे, लेकिन हमारे कार्यक्रम में शामिल हुआ हर शख़्स पहले साहित्यकार था, बाद में कुछ और। इस तरह के लोगों को हमने चुना और इसे एक साहित्यिक महोत्सव की तरह मनाया। विदेशों से भी लोग आए थे। पन्द्रह देशों से लोग इसमें शामिल हुए, लेकिन विदेशों से लोगों को बुलाते समय हमने यह ध्यान रखा कि वे मूल रूप से भारतवंशी हों। भले ही अब दूसरे देश

सम्पर्क *: ई-मेल : journoprachi@gmail.com*

के नागरिक बन गए हों। दूसरी श्रेणी उन लोगों की रही, जिन्होंने भारतीय साहित्य को विदेशों में प्रसारित किया हो, जैसे सेलिना हुसैन ने बांग्लादेश में भारतीय साहित्य को प्रमोट किया। डैनियल नेजर्स फ्रांस से हैं, जो तेलुगु साहित्य का अध्ययन और अध्यापन करते हैं। लिंडा हैंस हैं, जिन्होंने अमरीका में कबीर पर काम कर विद्वत्ता हासिल की। ऐसे लोगों को हमने बुलाया। दुनियाभर से साहित्यकारों को चुनकर शिमला में आयोजन किया गया, जो सफल रहा। ख़ास बात यह रही कि हिन्दी-अंग्रेज़ी के स्थानीय अख़बारों ने आगे बढ़कर बहुत अच्छा कवरेज दिया। बहुत दिनों तक लोग उस महोत्सव के बारे में लिखते रहे। इस महोत्सव से अकादेमी को और सरकार को भी अच्छा प्रोत्साहन मिला। देश-विदेश की साठ भाषाओं के चार सौ से अधिक साहित्यकारों और संस्कृतिकर्मियों ने तीन दिन तक चले इस महोत्सव में भागीदारी की, जहाँ विभिन्न विषयों के 65 सेशन हुए और सबमें लगातार विमर्श चलते रहे।

इतनी भाषाओं के साहित्यकार और संस्कृतिकर्मी वहाँ मौजूद रहे। साहित्य किस दिशा में बढ़ रहा है? आगे जा रहा है या पीछे उसने अपने-आपको समय के साथ बदला है या नहीं?

सवा चार सौ लेखकों में आप देखें कि कम-से-कम 40 तो समलैंगिक समुदाय के सदस्य रहे। समारोह में ये लोग एक प्रमुख आवाज़ की तरह उभरे। इस समुदाय की अपनी जो वेदना है, वे लोग किस तरह से परेशान रहे हैं, वो सब उन्होंने अपनी रचनाओं के माध्यम से एक वैश्विक मंच पर रखा और ऐसा करने का मौक़ा मिलने से उन्हें ख़ुशी भी बहुत हुई। समलैंगिक समुदाय के लिए हमने जो किया है, उस पर ओड़िया अख़बार 'सम्वाद' ने अच्छा कवरेज दिया। समारोह में 75 फ़ीसदी लोग युवा पीढ़ी के थे, क्योंकि उन्हें ही साहित्य की विरासत को आगे लेकर जाना है। पुराने और वरिष्ठ लोगों को भी बुलाया गया था ताकि युवा पीढ़ी उन्हें सुने और सीखे। बड़े लेखक भी युवा लेखकों को सुनें और उन्हें दिशा-निर्देश दें, ये दोनों चीज़ें इस समारोह के माध्यम से करने में हम सफल रहे। इसी तरह बाक़ी भाषाओं में भी देखा जाए तो वहाँ भी स्थान और उम्र का महत्व नहीं रहा। सर्वभाषी लोगों की तरह सब मिल-जुलकर रह रहे हैं और हर भाषा में साहित्य सृजन हो रहा है। आगे भी इसी तरह रहेगा, ऐसी उम्मीद है। इस तरह के महोत्सव से उन लोगों को प्रोत्साहन मिलेगा, क्योंकि किसी भी साहित्यकार को तब तक सन्तुष्टि नहीं मिलती, जब तक वह अपनी रचना दूसरे साहित्यकार को न सुना दे। इस तरह से युवा पीढ़ी को प्रोत्साहन मिला।

साहित्य अकादेमी देश की विभिन्न भाषा श्रेणियों में पुरस्कार देती है। इसके पीछे मक़सद क्या है?

हमें बहुत सारे नामवर सिंह, भीष्म साहनी और दिनकर चाहिए, महादेवी वर्मा, कृष्णा सोबती और मन्नू भंडारी भी चाहिए। कहाँ से मिलेंगे? आज जब हम बीज डालेंगे तो वही कल बड़े वृक्ष की तरह उभर कर आएँगे। बीज को समय-समय पर पानी देकर जब उसकी सही ढंग से देखभाल करेंगे तभी वे बड़े वृक्ष बनेंगे। रातोंरात कोई लेखक बड़ा नहीं बन जाता। साहित्य अकादेमी का काम यही है, जिसे 'राइटर्स होम' यानी 'लेखकों का घर' कहा जाता है। यह लेखकों के द्वारा चलाया जाता है और लेखकों के लिए ही है। हम उन्हें आज प्रोत्साहन नहीं देंगे तो कल कहाँ से हमें परिपक्व लेखक मिलेंगे। दूसरी चीज़ यह है कि बड़े-बड़े लेखकों ने जो लिखा है,

वो आज भी प्रासंगिक है। मतलब हमारे दैनिक जीवन में वो सब हो रहा है, जो वो कभी लिख गए। 'महाभारत' को ही देख लीजिए। पाँच हज़ार साल पहले व्यास ने जो लिखा, वो आज भी घटित होता दिखाई दे रहा है। उसी तरह बड़े लेखकों ने जो लिखा है, उसे कौन पढ़ेगा, अगर युवा पीढ़ी को हम तैयार नहीं करेंगे। युवा पीढ़ी को हम साहित्य की ओर खींचते हुए आगे बढ़ने के लिए प्रोत्साहित नहीं करेंगे तो फिर आगे ख़तरा हो सकता है। कोई भी देश या समाज अपनी पहचान बनाकर रख पाने में सफल नहीं होगा, क्योंकि समाज का सबसे अहम तत्त्व संस्कृति है। संस्कृति में साहित्य भी उसका एक अंग है, जिसे बुद्धिजीवी समुदाय से जोड़ा जाता है। इससे मतलब उन लोगों से ही नहीं है, जिन्होंने पी-एच.डी. कर रखी हो या बहुत पढ़े-लिखे हों। अनेक बड़े-बड़े साहित्यकार ऐसे हैं, जो दसवीं तक भी नहीं पढ़ सके, लेकिन उनके लिखे पर आज पी-एच.डी. हो रही है। कबीर कौन-सा कोई डिग्री लेकर लिख रहे थे। बावजूद इसके आज कबीर को समझना एक बड़े लेखक के लिए भी मुश्किल हो जाता है। यही बात तुलसीदास के साथ भी है। इसीलिए देश को मज़बूत बनना है तो देश का साहित्य भी मज़बूत होना चाहिए। मज़बूत होने में सबसे बड़ी भूमिका युवाओं की होती है और भारत जैसे देश की बात करें तो यहाँ सबसे ज़्यादा आबादी युवा है। हम गर्व से कह सकते हैं कि हमारा देश युवाओं से समृद्ध देश है। युवाओं के पास सीखने और करने की बहुत क्षमता है। उनका रुझान भी बहुमुखी है। युवा पीढ़ी को ज़्यादा-से-ज़्यादा प्रोत्साहन मिलना चाहिए। दो दशक बाद वे ही एक बड़े लेखक-साहित्यिक के तौर पर उभर कर आएँगे। यही लोग हमारे साहित्य को सँजोकर रखेंगे और हम दुनिया में भारत को मज़बूती के साथ खड़ा कर सकेंगे। इसीलिए अकादमी युवाओं को ज़्यादा-से-ज़्यादा प्रोत्साहन देती है। उन्हें बड़ा मंच दिया जा रहा है। साहित्य अकादेमी का युवा पुरस्कार 35 साल से कम उम्र के लेखकों को दिया जाता है। 50 हज़ार का पुरस्कार है यह और इसका चयन 24 भारतीय भाषाओं में हरेक से होता है। इसके साथ-साथ जो ग़ैर-मान्यता प्राप्त भाषाएँ हैं, उसमें भी लिखने वालों को समय-समय पर बुलाया जाता है। शिमला में हुए समारोह में अकादेमी ने युवा और वरिष्ठ, दोनों कैटेगरी के कोई 40 लोगों को बुलाया। बंजारा, खासी और मिज़ो जैसी बहुत सारी भाषाएँ हैं, जिनके लेखकों को भी समय-समय पर बुलाया जाता है। साहित्य अकादेमी का काम भारतीय साहित्य के उच्चतर मानदंडों को बचाकर रखना ही नहीं, उनका प्रसार भी करना है। भाषाओं के विकास में भी इसका अहम योगदान है।

समय के साथ भाषा तो बदलती ही है और बदलाव दिखाई भी दे रहा है। युवा पीढ़ी के सामने जो मुद्दे हैं, उनमें काफ़ी बदलाव हो गया है। 40-50 साल पहले जो परिस्थितियाँ थीं, वो अब बदल गई हैं। चाहे परिवार की बात करें, समाज की बात करें या तकनीकी विकास की। पहले संयुक्त परिवार पर आधारित बातें लिखी जाती थीं। आज एकल परिवार के भीतर कहानियाँ सिमट रही हैं। लिखने वालों की विषय-वस्तु भी वही बन रही है। उसी पर ज़्यादा ध्यान दिया जा रहा है। दूसरी तरफ़ सूचना प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में क्रान्ति हो चुकी है। मोबाइल में आज के समय पर लिखी संस्कृत भाषा तक की कविताएँ उपलब्ध हैं, कम्प्यूटर में सारी भाषाओं की कविताएँ हैं। सामने जो विषय-वस्तु है, उसमें बदलाव हो रहा है। 30-40 साल पहले ऐसा नहीं था। तब तो कम्प्यूटर था, पर इंटरनेट सबके यहाँ नहीं था। अब तो

टीवी देखने वाले लोग भी कम ही हैं। सब कुछ मोबाइल पर उपलब्ध है। इसीलिए जैसे-जैसे हम लोगों में बदलाव आ रहा है, वैसे-वैसे साहित्य में भी बदलाव आ रहा है। उस हिसाब से चीज़ों को व्यवस्थित करना ही होगा। दूसरा कोई रास्ता नहीं है, क्योंकि आज चाहे एकल परिवार की बात हो या पाश्चात्य सभ्यता का भारतीय संस्कृति पर प्रभाव, उसे तो लिखना ही पड़ेगा, जैसे मैंने 'समलैंगिक' विषय के बारे में कहा, पहले हमारे देश में वो उतना प्रचलित नहीं था, लेकिन पहले भी इनका अस्तित्व तो रहा ही होगा, पर वह ऑफ़िशियल नहीं था। अब वो एक विषय-वस्तु बन गया है। इस समुदाय के लोग आज जो लिखते हैं, उसमें उनकी वेदना, उनकी समस्याएँ, उनकी खुशी, उनके दुख, सब साहित्य के लिए विषय-वस्तु बन गए। ये चीज़ें चार दशक पहले लोगों ने देखी भी नहीं होंगी। इसलिए फ़र्क़ तो है, पर इसके साथ-साथ मैं यह भी कहूँगा कि टेक्नोलॉजी के चलते अब बहुत सारे लोगों ने सोशल मीडिया पर लिखना शुरू कर दिया है। बहुत सारे ब्लॉग लिखे जा रहे हैं। उनकी बात किसी किताब या पत्रिका में छपे, न छपे, पर आज जिसके मन में जो आ रहा है, वो सोशल मीडिया पर लिखकर पोस्ट कर देता है। यह अच्छी बात है, पर उनके लिखे में जो त्रुटियाँ हैं, उनमें सुधार नहीं हो पाता। क्रिएटिव राइटिंग पर जो बातचीत होनी चाहिए, उसमें कमी आ रही है। यह अच्छी बात नहीं है।

युवा साहित्य, बाल साहित्य और अनुवाद पुरस्कार कब और क्यों शुरू हुए?

युवा लेखकों के लिए ये बहुत बड़े अवसर हैं। वे लेखक हैं, इसलिए युवा पुरस्कार तो उन्हें मिल ही सकते हैं। आगे चलकर उन्हें तीन पुरस्कार और मिल सकते हैं। वह बाल साहित्य लिखकर बाल साहित्य पुरस्कार पा सकते हैं अनुवाद करके अनुवाद पुरस्कार पा सकते हैं। और फिर जो साहित्य अकादेमी पुरस्कार हैं, वह भी वे बड़ी उम्र में पा सकते हैं। युवाओं के सामने हर क्षेत्र खुला है। उनके लिए बहुत सारे एवेन्यू हैं। युवाओं के लिए हमने साहित्य अकादेमी में बहुत सारी नई योजनाएँ शुरू की हैं। मुलाक़ात का एक स्पेशल विशेष मंच है, उसके माध्यम से रचना पढ़ सकते हैं मैंने सचिव बनने के बाद युवा साहित्य से जुड़ा एक नया कार्यक्रम शुरू किया। युवा महोत्सव शुरू किया। युवा पुरस्कार के साथ-साथ हम युवा साहित्य का एक डेढ़ दिन का कार्यक्रम चलाते हैं। इसके साथ-साथ युवा लेखकों के लिए यात्रा अनुदान भी देते हैं। हिन्दी क्षेत्र के लोग अहिन्दी क्षेत्र में, दूसरी जगह जाकर वहाँ की संस्कृति, वहाँ के साहित्य के बारे में लिख सकते हैं। वहाँ के साहित्य की संस्थाएँ किस तरह से काम करती हैं, वहाँ के साहित्यकारों से मिलना, उनसे बात करना और उसे लिखना। इन सबके लिए हम अनुदान देते हैं। हर साल हर भाषा में पाँच-पाँच युवा लेखकों को यह अनुदान दिया जाता है। इसके अलावा युवा लेखकों के लिए 'नवोदय स्कीम' भी है। इसके लिए 40 साल की उम्र से पहले उनकी कोई एक किताब छपी होनी चाहिए। चाहे वह कविता-संकलन हो, कहानी-संकलन हो नाटक, हम किसी बड़े और विषय-विशेषज्ञ साहित्यकार से पढ़वाकर साहित्य अकादेमी के स्तर के हिसाब से छपने लायक पाए जाने पर छाप देते हैं। उसी लेखक से उसका इंट्रोडक्शन भी लिखवा देते हैं। किताब छपने के बाद उस पर जो रॉयल्टी बनती है, वो भी हम युवा लेखकों को देते हैं। बहुत सारी भाषाओं में छपने की दिक़्क़त हो सकती है। ज़्यादातर बड़े प्रकाशक किसी नए लेखक की किताब छापने के लिए

जल्दी तैयार नहीं होते। बाल साहित्य पुरस्कार देने की योजनाएँ क्षेत्रीय स्तर पर हो सकती हैं, पर केन्द्रीय स्तर पर इसका कोई प्रावधान पहले नहीं था। इसीलिए हम लोगों ने इसे शुरू किया। हमने सोचा कि जो लोग निरन्तर बाल साहित्य लिख रहे हैं, वो लोग कहाँ जाएँगे? इसीलिए बाल साहित्य पुरस्कार शुरू किया गया। इसे अच्छी प्रतिक्रिया मिली। हम लोगों ने पिछले दो साल से यह भी शुरू कर दिया है कि बाल साहित्य की जिस भी किताब को पुरस्कार दिया जाता है, दूसरी भाषाओं में उसका अनुवाद करवाना और उसे छापना ताकि उधर की संस्कृति, वहाँ की नदियों के नाम वाली किताब को जब हम हिन्दी में अनुवाद करके छापेंगे तो उन किताबों को पढ़ने वाले बच्चे उस जगह से परिचित होंगे। बचपन में ही पढ़ने की रुचि शुरू होती है, इसलिए हमने बाल साहित्य का अनुवाद करवाना शुरू कर दिया।

अनुवाद पुरस्कार तो सन् 1986 से ही दिए जा रहे हैं। अनुवाद के बिना भारत में साहित्य ठहर जाएगा। उदाहरण के लिए आप मुझसे हिन्दी में सवाल कर रही हैं, लेकिन मेरी मातृभाषा तेलुगु है। आप जो भी पूछ रही हैं, उसे मेरा दिमाग़ तेलुगु में अनुवाद कर मुझे समझा दे रहा है कि आप क्या पूछ रही हैं। भारत में प्रचलित भी है कि हर नागरिक कम-से-कम तीन भाषाएँ न सही, पर दो भाषाएँ तो बोलता ही है। हर भारतीय को दो भाषाएँ तो आती ही हैं, चाहे वो रिक्शा चलाने वाला हो या कोई और। उसमें भी सबसे बड़ी भूमिका हिन्दी की है भारत में। हिन्दी अगर आती है तो आप चाहे केरल में हों, मणिपुर में हों, आँध्र में हों या कश्मीर में, कैसे भी करके, टूटे-फूटे व्याकरण के साथ ही सही, अपना व्यवसाय चला सकते हैं। जैसे मैं ही चार भाषाएँ तो अच्छी तरह पढ़ सकता हूँ, बोल सकता हूँ, जैसे—मराठी, तेलुगु, हिन्दी और अंग्रेज़ी तो है ही। बिना अनुवाद के भारत ठहर ही जाएगा। भारत में अनुवाद का बहुत महत्व है। अनुवाद के बिना एक-दूसरे की संस्कृति को हम जान ही नहीं पाएँगे। भारत के लिए ही नहीं, वैश्विक स्तर पर भी अनुवाद की बहुत अहमियत है। इसीलिए साहित्य अकादेमी ने अनुवाद पुरस्कार शुरू किया, एक भारतीय भाषा से दूसरी भारतीय भाषा में अनुवाद की हुई उत्कृष्ट कृति को हर साल यह पुरस्कार दिया जाता है। 30-40 साल पहले हमारे पास अच्छे अनुवादक थे, जो सीधे एक भाषा से दूसरी भाषा में अनुवाद कर लिया करते थे, क्योंकि देश में उस वक़्त सबसे बड़े जो शिक्षण संस्थान थे, वो शान्ति निकेतन और बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी जैसे हुआ करते थे। लोग वहीं जाकर पढ़ा करते थे। इस तरह के बहुत सारे लोग रहे हैं। जो लोग उस समय बीएचयू में पढ़ते थे, वो हिन्दी को अच्छे से पढ़ लेते थे, पर आज वो पीढ़ी नहीं है। आज हर प्रान्त में अच्छे इंस्टीट्यूशन हो गए हैं। अब लोगों को दूसरी जगहों में पढ़ाई के लिए जाने की ज़रूरत नहीं पड़ती। इसीलिए आज हमारे पास सीधे अनुवाद करने वाले लोग नहीं हैं। ऐसे में हिन्दी की सबसे अहम भूमिका हो गई है। अंग्रेज़ी के लिए भी हिन्दी लिंक लैंग्वेज बन गई है। किसी मणिपुरी कहानी का कश्मीरी में अनुवाद करवाना हो तो पहले उसे हिन्दी या अंग्रेज़ी में अनुवाद करवाना होगा, तभी वह दूसरी भाषाओं में अनुवादित सकती है।

हिन्दी का वर्तमान और भविष्य क्या है?

हिन्दी आगे बढ़ते जाने वाली भाषा है। बीस साल पहले का आँकड़ा देखिए और आज का आँकड़ा देखिए। आज भारत की आधी से अधिक आबादी हिन्दी समझ लेती है, चाहे वो देश के किसी कोने की हो। उनका व्याकरण

सही हो या न हो, पर टूटी-फूटी हिन्दी सब लोग बोल लेते हैं, समझ लेते हैं। आज ऐसा हो गया है कि हिन्दी के बिना काम चलना मुश्किल है, लेकिन उसके साथ हमारी अन्य भारतीय भाषाओं का भी अपना महत्व है। हिन्दी हमारे देश में दूसरी प्रमुख भाषा तो है ही। आप तेलुगु स्कूल में पढ़ रहे हैं तो एक भाषा तेलुगु है, दूसरी भाषा हिन्दी हो गई। अंग्रेज़ी माध्यम में पढ़ रहे हैं तो अंग्रेज़ी पहली भाषा है और दूसरी हिन्दी हो गई, तीसरी तेलुगु। इसीलिए हिन्दी को ख़तरा तो बिल्कुल नहीं है। यह आगे बढ़ती जाएगी, क्योंकि हिन्दी ऐसी भाषा नहीं है, जिसका दायरा सीमित हो, उसका व्याकरण सीमित हो या उसके शब्द सीमित हों। वह सभी भाषाओं को अपने में समेट लेती है, जैसे सारी नदियाँ जाकर सागर में मिलती हैं। हिन्दी के बढ़ने का कारण भी यही है कि यह सभी लोगों को साथ लेकर चलती है। सभी भाषाओं के शब्दों को अपने में समेट लेती है। इस कारण से इसकी प्रगति लगातार हो रही है। हिन्दी और अंग्रेज़ी में व्यक्तिगत तौर पर मैं जो फ़र्क महसूस करता हूँ, वह है भारतीयता का। अंग्रेज़ी में यह नहीं है। उदाहरण के लिए हिन्दी में कहावतें हैं, जैसी हर भाषा में होती हैं। कम शब्दों में बहुत कुछ कह देना। उसी का जब हम अंग्रेज़ी में अनुवाद करेंगे तो उसके लिए शब्द नहीं मिलेंगे, लेकिन जब भारतीय भाषाओं का हिन्दी में अनुवाद करना है या हिन्दी से भारतीय भाषाओं में अनुवाद करना है तो उसके समतुल्य शब्द आराम से मिल जाते हैं, क्योंकि उन सभी की संस्कृति एक है। चाहे हम अलग-अलग भाषाओं या अलग-अलग प्रान्तों से हैं, लेकिन हमारी एक समग्र संस्कृति है। भारतीय साहित्य एक ही है। भले ही बहुत सारी भाषाओं में लिखा गया हो, पर मूल वही है। ये चीज़ हिन्दी में दिखाई देती है। इसीलिए हिन्दी आगे बढ़ती जाएगी, उसे पीछे मुड़कर देखने की ज़रूरत नहीं है। विश्व में अब हिन्दी का महत्व इतना बढ़ गया है कि चीन जैसे देश भी अपने लोगों को यहाँ भेजकर हिन्दी पढ़ा रहे हैं। भारत के उपभोक्ता समाज में जाना है तो हिन्दी एकमात्र ऐसी भाषा है, जो इन्हें बाज़ार देने में मदद करती है। इसीलिए बड़े-बड़े देशों में लोग हिन्दी सीखने लगे हैं। बहुत-से विश्वविद्यालयों और महाविद्यालयों में हिन्दी पढ़ाई जा रही है। इसी से पता चलता है कि हिन्दी का अपना अलग ही महत्व है। संयुक्त राष्ट्र में बहुभाषावाद प्रस्ताव पास हो गया है तो अब हम यह उम्मीद कर सकते हैं कि संयुक्त राष्ट्र में भी हिन्दी मान्य हो जाएगी, जैसे वहाँ अभी छह भाषाएँ मान्य हैं। हमारे पूर्व प्रधानमन्त्री अटल बिहारी वाजपेयी ने संयुक्त राष्ट्र को सबसे पहले हिन्दी में सम्बोधित किया था। वर्तमान प्रधानमन्त्री नरेन्द्र मोदी ने भी पिछले दिनों संयुक्त राष्ट्र को हिन्दी में ही सम्बोधित किया है, जिसकी सराहना होनी चाहिए, क्योंकि जब विदेशी राष्ट्राध्यक्ष किसी दूसरे देश में जाते हैं तो वे अपनी भाषा में ही बोलते हैं। आपको अनुवाद करना है तो करें, पर हिन्दी के मामले में ऐसा है कि हम गुलामी की मानसिकता से बाहर ही नहीं आ पा रहे। अंग्रेज़ी का वर्चस्व हमारे अंदर धँसा हुआ है। मैं सिर्फ़ हिन्दी के बारे में ऐसा नहीं कह रहा। आपकी जो भी मातृभाषा है, आप उसमें बोलें। अंग्रेज़ी को बीच में क्यों लाते हैं? ठीक हैं, अंग्रेज़ी कामकाजी भाषा है, बनी रहे। उसे सब प्रयोग करें, पर वही ज़िन्दगी है, ऐसा सोचकर न बैठें। अब हमें उस मानसिकता से बाहर आ जाना चाहिए। देश हिन्दी की पटरी पर चलकर आगे बढ़ रहा है। इसे खुले मन से अपनाएँ। ❑



प्रदीप सरदाना

बेला बोस
बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न अभिनेत्री

बेला बोस एक ऐसी अभिनेत्री रहीं, जिन्होंने नायिका की भूमिकाएँ ज़्यादा नहीं की थीं, न ही वह हेलन जैसी लोकप्रिय फ़िल्म डांसर थीं। इस सबके बावजूद सन् 1960 से 1980 के बीस वर्षों में बेला बोस का नाम फ़िल्म क्षितिज के आभामंडल में ख़ूब चमकता था। वह नृत्य में इतनी पारंगत थीं कि कुछ नायिकाएँ उनके साथ नृत्य करने से घबराती थीं। उनकी लोकप्रियता, प्रतिभा और सादगी की मिसाल इस बात से भी मिलती है कि उस दौर में बहुत-सी माँएँ अपनी बेटी का नाम बेला रखने लगी थीं।





लगभग 200 फ़िल्मों में अपने नृत्य और अभिनय के कौशल दिखाने वाली बेला अब इस दुनिया में नहीं रहीं लेकिन उनके फ़िल्मों में किए गए काम और योगदान को बरसों याद किया जाएगा। हालाँकि वह करीब 20 बरसों से तो अभिनय से दूर थीं लेकिन सोशल मीडिया के माध्यम से बहुत-से लोगों के बीच अपनी उपस्थिति दर्ज कराए रखती थीं।

एक जनवरी को जब उन्होंने सभी दोस्तों को नव वर्ष की शुभकामनाएँ दी थीं, तब इस बात का अहसास ज़रा भी नहीं था कि यह उनकी 'लास्ट पोस्ट' होगी लेकिन उसके बाद वह कुछ ऐसी अस्वस्थ हुईं कि दिल का दौरा पड़ने से, गत 20 फरवरी को, नवी मुम्बई के एमजीएम अस्पताल में उनका निधन हो गया।

बेला बोस ने अपने जीवन में जो सफलताएँ और लोकप्रियता पाईं वह अद्‌भुत है क्योंकि उनका जीवन कभी इतना दुखमय, कष्टमय और संघर्षमय हो गया था कि और कोई होता तो टूटकर हार मान लेता लेकिन बेला ने अपने संघर्ष से पतझड़ को वसंत बेला में बदल दिया।

बेला का जन्म 18 अप्रैल, 1941 को

***सम्पर्क** : ई-मेल : pradeepsardana29@gmail.com*

कोलकाता में, एक सम्पन्न कपड़ा व्यवसायी अमूल्य रत्न बोस के यहाँ हुआ था। पाँच बहन-भाइयों में बेला बीच में यानी तीसरे नंबर पर थीं लेकिन 1950, में जिस बैंक में पिता का खाता था, वह बैंक दिवालिया हो गया। बस यहीं से बोस परिवार के ऐसे बुरे दिन शुरू हुए कि क़रीब दस बरस तक हालात बेहद ख़राब रहे। पिता नए सिरे से काम शुरू करने के लिए परिवार के साथ 1951 में मुम्बई आ गए लेकिन 1952 में नए साल के पहले दिन एक सड़क दुर्घटना में उनका सिर्फ़ 36 साल की उम्र में निधन हो गया।

तब बेला की माँ लीलावती चार महीने के गर्भ से थीं। चार बच्चों के परिवार की ज़िम्मेदारी पहले ही उनके सिर पर थी। बेला बताती थीं, "तब मैं सिर्फ़ 11 साल की थी लेकिन हमारी माँ इतनी हिम्मत वाली थीं कि दुखों का पहाड़ टूटने पर भी उन्होंने हौसले बरक़रार रखे। तीन महीने का नर्सिंग कोर्स करके वह एक अस्पताल में नर्स बन गईं। मेरा बड़ा भाई फ़ैक्ट्री में नौकरी करने लगा। मैं और मेरी बड़ी बहन भी पढ़ाई के साथ कुछ कामकाज करने लगे।"

असल में बेला को डांस का शौक तो बचपन से था। मुम्बई में जहाँ ये लोग रहते थे वहाँ एक गुरु मणिपुरी नृत्य सीखाते थे। बेला भी उनकी शिष्या बन गईं। वह नृत्य सिखाने के तो पैसे नहीं लेते थे लेकिन उसके बदले उनके स्टेज शो में इन्हें मुफ़्त काम करना पड़ता था। तभी एक तबलावादक नवाब अली ने बेला को फ़िल्मी नृत्य सीखाकर एक नई दिशा दे दी।

फ़िल्मों से बेला का प्रथम परिचय 1952 में तब हुआ, जब मुम्बई के विले पार्ले स्थित विष्णु स्टूडियो में फ़िल्म 'जलपरी' की शूटिंग देखने का मौक़ा मिला। फ़िल्म के सेट पर अशोक कुमार, नलिनी जयवंत और गीता बाली के अंदाज़ देख वह खुश हो गईं। इसी दौरान बेला ने चर्नी रोड पर नृत्य गुरु बिपिन सिन्हा से नृत्य सीखना शुरू कर दिया। तब इनके साथ आशा पारेख और सीमा देव (तब नलिनी सराफ़) भी नृत्य सीखती थीं। आशा पारेख को भी अपने डांस के कारण तभी फ़िल्मों में बाल कलाकार की भूमिकाएँ मिलनी शुरू हो गईं। इधर बेला को भी बिपिन सिन्हा ने 1953 में एक फ़िल्म '3 हेडिड स्नेक' में काम दिला दिया जिसमें बेला ने मणिपुरी नृत्य किया। इसके बाद बेला को अक्सर समूह नृत्य के अंदर के अवसर मिलते रहे लेकिन बेला के लिए मुश्किल यह थी कि वह सह-नृत्यांगनाओं से क़द में लम्बी थीं। इसलिए कभी फ़िल्म निर्देशक तो कभी नृत्य निर्देशक बेला को बाहर निकाल देते थे।

यह देख बेला सोचतीं कि उनका ऊँचा लम्बा क़द उनकी परेशानी का सबब बन रहा है लेकिन 1958 में जब वह दसवीं की पढ़ाई के साथ फ़िल्म 'मैं नशे में हूँ' में एक समूह नृत्य कर रही थीं तो फ़िल्म के निर्देशक नरेश सहगल ने बेला का लम्बा क़द देख उनसे पूछा, "सोलो डांस कर सकती हो?" यह सुन बेला खुशी से हाथ जोड़ सहगल से बोलीं, "आप मौक़ा देंगे तो ज़रूर।" बेला ने फ़िल्म के नायक राज कपूर के साथ फ़िल्म के शीर्षक गीत 'मुझको यारो माफ़ करना, मैं नशे में हूँ' पर नृत्य किया तो यह गीत सुपर हिट हो गया। इसी फ़िल्म में बेला ने 'ये न थी हमारी क़िस्मत' गीत पर भी नृत्य किया। इसके बाद तो बेला ने फिर पीछे मुड़कर नहीं देखा।

बेला के नाम और काम की महक फ़िल्म नगरी में ऐसे फैली कि 1962 में तो उन्हें नृत्य से अलग गुरु दत्त की फ़िल्म 'सौतेला भाई' में एक ठीक-ठाक भूमिका भी मिल गई। यहाँ तक कि 1966 में तो फ़िल्मकार बलवंत भट्ट ने उन्हें फ़िल्म 'नागिन और सपेरा' में मुख्य नायिका भी ले लिया जिसमें बेला के नायक थे मनहर देसाई।

बेला बोस ने अपने करियर में हिन्दी में तो बहुत-सी फ़िल्में कीं। राज कपूर, शम्मी कपूर, धर्मेंद्र, संजीव कुमार, सुनील दत्त, मनोज कुमार, दारा सिंह, जीतेंद्र, फ़िरोज़ ख़ान, जॉय मुखर्जी, चन्द्रशेखर, जॉनी वाकर, माला सिन्हा, आशा पारेख, वैजयंतीमाला, तनूजा और हेलन के साथ निभाई इनकी कई भूमिकाएँ सु र्ख़ियों में रहीं। इनकी ऐसी फ़िल्मों को याद करें तो 'चित्रलेखा', 'बंदिनी', 'प्रोफ़ेसर', 'एक फूल चार काँटे', 'लूटेरा', 'आम्रपाली', 'पुरानी पहचान', 'दिल्लगी', 'जीने की राह', 'शिकार', 'रॉकी मेरा नाम', 'चा चा चा', 'ओपेरा हाउस', 'अनपढ़', 'हवा महल', 'हम सब उस्ताद हैं', 'अनीता', 'पूनम की रात', 'अभिनेत्री', 'देवर', 'दिल ने फिर याद किया', 'ज़िद्दी', 'बहारों के सपने', 'दिल दौलत दुनिया' और 'सौ दिन सास के' सहित बहुत से नाम याद आते चले जाएँगे। हिन्दी के साथ बेला ने बांग्ला, भोजपुरी, पंजाबी सहित अन्य भाषाओं की कुछ फ़िल्मों में भी काम किया। सन् 2004 में तो बेला बोस ने सहारा वन पर प्रसा रित किरण कुमार-अरुणा ईरानी के धारावाहिक 'ज़मीन से आसमान तक' में काम करके अभिनय से संन्यास-सा ले लिया था।

बेला बोस ने फ़िल्मों में शास्त्रीय नृत्य से लेकर लोक नृत्य, मुजरा और वेस्टर्न डांस एवं क्लब डांस तक सभी तरह के नृत्य किए। ऐसे ही गम्भीर और हास्य भूमिकाओं के साथ स्टंट रोल भी किए और खलनायिका के किरदार को भी बख़ूबी निभाया। बड़ी बात यह है कि उनकी प्रतिभा अभिनय या नृत्य तक ही सीमित नहीं थी। वह एक अच्छी चित्रकार और एक तैराक भी थीं। बांग्ला रंगमंच पर कई नाटक भी बेला ने किए। यहाँ तक कि उन्होंने अपने पति आशीष कुमार सेनगुप्ता के संग मिलकर कुछ फ़िल्मों का निर्माण भी किया।

बांग्ला फ़िल्मों के प्रसिद्ध अभिनेता रहे आशीष कुमार से बेला की मुलाक़ात अभिनेत्री माला सिन्हा के घर पर हुई थी। उन्होंने 'बीवी और मकान' फ़िल्म में साथ काम भी किया। फिर दोनों ने 1967 में विवाह कर लिया। 1975 में जब आशीष कुमार की नायक और सह-निर्माता के रूप में सुपर हिट फ़िल्म 'जय संतोषी माँ' आई तो बेला ने इस फ़िल्म में एक नेगेटिव रोल भी किया। इसके बाद इस दंपत्ति ने 'गंगा सागर', 'राजा हरि श्चन्द्र', 'सोलह शुक्रवार', 'नवरात्रि' और 'बद्रीनाथ धाम' जैसी कुछ धार्मिक फ़िल्मों का निर्माण भी किया।

हालाँकि आशीष ने 23 नवम्बर, 2013 में तब इस दुनिया को अलविदा कह दिया जब वह परिवार सहित गोवा घूमने गए हुए थे। वर्तमान में बेला बोस अपने बेटे अभिजीत के साथ ही नवी मुम्बई में रह रही थीं लेकिन बेला बोस की इस जग से विदाई के बाद अब सब बातें यादें बन गई हैं। ❑



राजीव श्रीवास्तव

सतीश कौशिक
ऊँची उड़ान में पंख समेट लिया

आज स्मरण हो आया वो दिन जब वर्ष 2014 में गोवा में भारत सरकार द्वारा आयोजित अंतरराष्ट्रीय फ़िल्म समारोह में सतीश कौशिक से मेरा मिलना हुआ था। इस भेंट में अभिनेता अनुपम खेर भी साथ में थे। हमारी इस बातचीत में कोई आडम्बर नहीं था और न ही समय का कोई बन्धन ही था। खाने में सतीश का मनपसन्द मसालेदार व्यंजन था जिसे वो मेरे संग बतियाते हुए खाते भी जा रहे थे। मैंने उन्हें उस दिन कहा था कि आपको तेल-मसाले से थोड़ा दूर रहना चाहिए पर अपने चिर-परिचित स्वभाव में उन्होंने उत्तर दिया था कि चटपटे खाने-पीने से मैं दूर नहीं रह सकता।



अभिनेता, निर्माता-निर्देशक, पटकथा लेखक सतीश कौशिक के असमय निधन की सूचना प्राप्त होते ही मेरे मन में जो प्रथम विचार आया वो था- सतीश भाई, ये उम्र जाने की तो नहीं होती। अभी तो सम्भावनाओं के द्वार से ढेरों रचनात्मक कार्यों की छवियाँ दृश्यमान होने को थीं। ओह, मृत्यु के अकस्मात् आगमन ने समस्त सम्भावनाओं पर अब पूर्ण विराम लगा दिया है।

बैसाखी पर्व के ही दिन 13 अप्रैल, 1956 को दिल्ली-एनसीआर स्थित महेन्द्रगढ़ (हरियाणा) में जन्मे सतीश कौशिक की शिक्षा-दीक्षा दिल्ली में हुई थी। 1972 में दिल्ली विश्वविद्यालय के किरोड़ीमल कॉलेज से स्नातक की उपाधि प्राप्त कर सतीश ने दिल्ली में ही रहते हुए 'राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय' से पढ़ाई पूरी करने के पश्चात पुणे के 'फ़िल्म एवं टीवी संस्थान' में रहकर छह माह तक फ़िल्म विधा का शिक्षण-प्रशिक्षण प्राप्त किया था। अभिनय की चाह सतीश के भीतर जैसे गहरे उतर चुकी थी पर तब की बम्बई और आज की मुम्बई में उन्हें फ़िल्मों में काम मिलने के उपक्रम में एक वर्ष तक चकाला, अँधेरी (पूर्व), मुम्बई की एक प्रीमियर टेक्स्टाइल मिल में काम करना पड़ा था। इन्हीं दिनों संध्या और रात्रि के समय में पृथ्वी थिएटर में नाटकों में काम करने का भी उन्होंने एक नियम बना लिया था। संघर्ष की आँच में तपकर सतीश

सम्पर्क : *ई-मेल : rajeevrsvpshrivastav@gmail.com*

ने फ़िल्मों में अवसर के लिए एक स्टूडियो से दूसरे में भटकते हुए जिस प्रथम फ़िल्म में अपने अभिनय का श्रीगणेश किया था वो थी रबिन्द्र धर्मराज निर्देशित और स्मिता पाटिल-नसीरुद्दीन शाह अभिनीत 'चक्र' (1981)। इस फ़िल्म में सतीश ने बूट पॉलिश करने वाले लड़के की छोटी-सी भूमिका की थी जिसके लिए उन्हें तब मात्र पाँच सौ रुपये पारिश्रमिक मिले थे। संघर्ष के इन्हीं वर्षों में नायक के रूप में अनिल कपूर की प्रथम फ़िल्म 'वो सात दिन' (1983) के अतिरिक्त उसी वर्ष 'जाने भी दो यारों', 'मासूम', 'मण्डी' और आगे के वर्षों में 'उत्सव', 'सागर' जैसी कुछ और फ़िल्मों में वो छोटी-छोटी भूमिकाओं में दिखे थे। इसी अवधि में अनिल कपूर के संग उनकी मित्रता हुई जो आगे चलकर और भी प्रगाढ़ होती चली गई। अनुपम खेर के साथ 'एनएसडी' में उनके सहपाठी रहते हुए ही उनकी निकटता घनिष्ठ हो चली थी जो मुम्बई में अनिल के साथ मिलकर एक 'तिगड़ी' बन गई।

शेखर कपूर निर्देशित, श्रीदेवी-अनिल कपूर अभिनीत 'मिस्टर इण्डिया' (1987) में 'कैलेण्डर' की भूमिका ने सतीश कौशिक को रातोंरात प्रसिद्धि के शीर्ष पर खड़ा कर दिया। इस फ़िल्म में सतीश सहयोगी निर्देशक भी थे। गोवा की उस भेंट में ही सतीश कौशिक ने बताया था कि निर्देशक बनना कभी उनका ध्येय नहीं था पर अभिनय के अवसर तब कम ही मिला करते थे इसलिए निर्देशन और पटकथा लिखने का काम भी वो साथ-साथ करते रहे जो आगे चलकर उनके स्वतन्त्र निर्देशक बनने में काम आया। निर्देशक के रूप में सतीश की प्रथम फ़िल्म थी 'रूप की रानी चोरों का राजा' (1993) पर बॉक्स ऑफ़िस पर औंधे मुँह गिरने के कारण सतीश के निर्देशकीय कार्य में एक अवरोध तो आया पर पूर्ण विराम नहीं लगा। ऐसे में सतीश की अभिनय की गाड़ी फिर भी चलती रही। फ़िल्म 'राम लखन' (1989) और 'साजन चले ससुराल' (1996) के लिए सतीश को सर्वश्रेष्ठ हास्य अभिनेता का फ़िल्मफ़ेयर पुरस्कार मिल चुका है। डेविड धवन निर्देशित 'दीवाना मस्ताना' (1997) में 'पप्पू पेजर' की भूमिका और ब्रिटिश ड्रामा फ़िल्म 'ब्रिक लेन' (2007) में चानु अहमद के पात्र में सतीश कौशिक अत्यन्त ही प्रभावी रहे हैं। वेब सिरीज़ 'ब्लडी ब्रदर्स' (2022) में हाँडा की भूमिका में सतीश ने गत वर्ष सभी का ध्यान विशेष रूप से आकृष्ट किया था।

दिल्ली के 'एनएसडी', पूना के 'एफ़टीआईआई' और रंगमंच के अपने अनुभव से सतीश का अभिनय सम्बन्धित पात्रों के साँचे में ढाल कर अत्यन्त ही सहज भाव से प्रगट होता था। हास्य के तो वो विशेषज्ञ ही थे। अभिनय और सम्वाद सम्प्रेषण के मध्य सतीश का सामंजस्य इतना संतुलित हुआ करता था कि वो अपने पात्र से सहज रूप से घुल-मिल जाते थे।

अभिनेत्री कँगना रनाउत द्वारा निर्मित-निर्देशित-अभिनीत फ़िल्म 'इमरजेंसी' में राजनेता जगजीवन राम की भूमिका में सतीश कौशिक हैं जो अभी निर्माणाधीन है। सतीश अपने पारिवारिक मित्रों के संग होली मनाने के लिए होली की पूर्व संध्या पर दिल्ली आए थे और होली के ही दिन आठ मार्च को उनका हृदयाघात से निधन हो गया। दिल्ली-एनसीआर की जिस माटी में सतीश ने आँखें खोली थीं, बालपन की अठखेलियाँ की थीं, शिक्षा-दीक्षा ग्रहण की थी, उसी मिट्टी में उन्होंने अपनी आँखें सदा के लिए मूँद ली। एक सम्भावना जो खुले आकाश में अभी और भी ऊँची उड़ान को प्रस्तुत, वो अकस्मात् ही इस प्रकार अपने पंख समेट लेगी, ये कौन जानता था? ❑

आज़ादी का अमृत महोत्सव

तिलका डेका

और तुरही बज उठी

रविचन्द्र गुप्ता

अगस्त, 1942 के भारत छोड़ो आंदोलन ने जन-क्रान्ति का रूप ले लिया था। बिहार, उड़ीसा, पूर्वी उत्तर प्रदेश, बंगाल के कुछ हिस्सों तथा कर्नाटक और महाराष्ट्र आदि राज्यों में क्रान्ति की विकराल लपटें उठ रही थीं। ब्रिटिश शासन को उखाड़ फेंकने के लिए इस क्रान्ति ने लोगों को जुनूनी बना दिया था। क्रान्ति पर काबू पाने के लिए ब्रिटिश सेना की सत्तावन बटालियनें अंधाधुंध लूटपाट और गाँवों में आग लगाने पर लगी हुई थीं। धीरे-धीरे क्रान्ति के समाचार असम के दूर-दराज़ के गाँवों और अँचलों में भी पहुँच रहे थे।

असम में नौगाँव ज़िले में मुख्य मार्ग (जी.टी. रोड) से केवल तीन या चार किलोमीटर की दूरी पर बराजपुजिय (बेकजिया) गाँव की घनी बस्ती थी। इस गाँव की बस्ती के लोगों में एक ही बात की चर्चा थी कि आर-पार की लड़ाई छिड़ चुकी है। कभी भी किसी भी समय ब्रिटिश सेना गाँव में आकर मार-काट मचा सकती है। इसी भय के मारे लोगों की रातों की नींद उड़ चुकी थी।

17 अगस्त की रात थी। रात्रि का प्रथम पहर बीत जाने पर भी लोगों की आँखों में नींद नहीं थी। आकाश में घुमड़ते बादल और बिजली की चमचमाहट वातावरण को और भी भयावह बना रही थी। ऐसे ही वातावरण में गाँव की अमन सेना के युवकों का एक दल गुप्त रूप से अपनी भावी योजना पर विचार कर रहा था। अमन सेना के नायक का स्वर था, "साथियो! मैं आज ही नौगाँव से लौटा हूँ। नया समाचार यह है कि कांग्रेस ने 'अंग्रेज़ों भारत छोड़ो' आंदोलन की घोषणा कर दी है। महात्मा गाँधी का जनता के नाम संदेश है, 'करो या मरो'। अतः सारे देश में नेताओं को गिरफ़्तार करके जेलों में ठूँस दिया गया है। आंदोलन की बागडोर आम जनता और छात्रों ने सम्भाल ली है। अनेक शहरों में पुलिस बल से जूझते लोग क़ुर्बानी दे रहे हैं। आंदोलन को दबाने के लिए सरकार का दमन-चक्र तेज़ी से चल रहा है। ब्रिटिश सेना गाँवों को लूट रही है और आग लगा रही है। अतः हमें अपनी सुरक्षा के लिए स्वयं ही पुख़्ता इंतज़ाम करना होगा।"

नायक ने गाँव की सुरक्षा की पूरी योजना युवा कार्यकर्ताओं के आगे रख दी। तदनुसार गाँव के अंदर प्रवेश के रास्तों पर चौबीस घंटे का पहरा बैठा दिया गया। प्रत्येक नाके पर बदल-बदल कर कार्यकर्ता पहरा देने लगे। इन पहरेदारों के पास एक

तुरही (फूँककर बजाने पर ज़ोर से ध्वनित होने वाला बाजा) होती थी। सभी को यह निर्देश था कि यदि किसी भी प्रकार के संकट का आभास हो या अंग्रेज़ पुलिस या सैनिक गाँव में प्रवेश करें तो तुरही बजा कर गाँव वालों को संकेत दे दिया जाए। गाँव वालों को निर्देश था कि संकट की ध्वनि सुनते ही गाँव के लोग अपने-अपने हथियार लेकर नाके पर इकट्ठा हो जाएँ।

20 अगस्त की रात्रि को एक नाके पर 18 वर्षीय युवा तिलका डेका तैनात था। तिलका को कुछ सैनिकों के आने की आहट सुनाई दी। थोड़ी देर में एक फ़ौजी टुकड़ी नाके के निकट आ पहुँची। तिलका ने तुरन्त तुरही को मुँह पर लगा कर फूँका। वह फूँक ही रहा था कि एक सैनिक ने उसे अपनी लात से ठोकर मार कर गिरा दिया और उसके सीने पर बंदूक रख दी। सैनिक बोला-

"ख़बरदार! अब अगर यह बाजा बजाया तो सीने से गोली पार कर दूँगा।"

तिलका मौन ही रहा। उसने सोचा यह मुझे मार ही तो देगा लेकिन गाँव वालों को सूचना पहुँच गई तो बहुत लोगों की हत्या होने से बच जाएगी। मेरा कर्त्तव्य है गाँव वालों को सूचना देना। मैं कर्त्तव्य पालन अवश्य करूँगा।" यह सोचकर मौत की परवाह न करते हुए उसने पूरी ताक़त से तुरही को फूँका और तुरही गाँव के वातावरण में गूँज उठी।

आदेश न मानने पर सैनिक ने तिलका के सीने को गोलियों से छेद दिया। अपने कर्त्तव्य का पालन करते हुए मातृवेदी पर एक पुष्प भेंट हो गया।

तिलका द्वारा बजाई गई तुरही का स्वर इतनी ज़ोर से गूँजा कि संकेत मिलते ही गाँव के लोग हथियारों के साथ नाके पर आ पहुँचे। उन्होंने देखा कि तिलका अपना कर्त्तव्य पालन करते हुए अनंत नींद में सो चुका है और उसका शव सैनिकों के क़ब्ज़े में है। गाँव के लोगों ने शव लेना चाहा तो एक सैनिक ने बंदूक तानते हुए उन्हें रोक दिया। अधिकारी बोला-

"ख़बरदार! यदि किसी ने भी शव को हाथ लगाया तो सबको भूनकर रख दिया जाएगा।" तिलका के पिता मनीराम डेका पुत्र शोक की पीड़ा के बाद भी धैर्य रखे हुए थे। अधिकारी द्वारा शव न दिए जाने की चेतावनी से उनका धैर्य टूट गया और हृदय प्रतिशोध की ज्वाला से धधक उठा। मनीराम ने ललकारा-

"खून की नदी ही क्यों न बह जाए, हम शव को लेकर ही रहेंगे।"

इसके साथ ही उन्होंने गाँव वालों को नारे के साथ संकेत दिया- वन्देमातरम् और सारा गाँव एक साथ सेना के जवानों पर टूट पड़ा। सेना ने भी गोलियाँ चलाईं। दो लोग मारे गए लेकिन कुछ ही क्षणों में ग्रामीण तिलका के शव को ले जाने में कामयाब हो गए। सेना को आभास हो गया था कि गाँव के लोगों की संख्या इतनी अधिक है कि वे उन्हें ज़िन्दा नहीं छोड़ेंगे। अतः उन्हें जान बचाकर भागना पड़ा।

सेना उस समय तो वापस लौट गई लेकिन बाद में उसने गाँव के तीन सौ लोगों को गिरफ़्तार करके जेलों में ठूँस दिया। विरोध करने पर शान्ति सेना के एक कार्यकर्ता की अग्नि में झोंककर हत्या कर दी। ❑

(प्रकाशन विभाग की पुस्तक 'शहीद बच्चों की गौरव गाथा' से)

सौराष्ट्र की गीत-कथाएँ

झवेरचन्द मेघाणी

इन गीत-कथाओं को मैं कथा जैसे रस के कारण महत्व नहीं देता। कथा जैसी विविध घटनाओं का विकास तो शायद ही किसी में है। कई गीत-कथाएँ तो एक-सी वस्तु ही वर्णित करती हैं। यहाँ इस पुस्तक में सब प्रेम की, वे भी करुणान्त प्रेम की कथाएँ संग्रहीत हैं। वीरता-सम्बन्धी वार्ताएँ दूसरे संग्रह में जमा करूँगा। वार्ता के अंत में प्रेमीजन अपने प्रेम-पात्र की चिता पर चढ़कर बलि देते हैं, इस सच-झूठ की परख में मैं नहीं पड़ूँगा। मैं तो इन दोहों में व्यक्त भावनाओं के मूल और उन भावनाओं की आलेखन-कला का मूल ढूँढ रहा हूँ। अहीर, चारण, काठी, हाटी, मखाड़, खारी आदि कई ख़ानाबदोश जातियों के प्रेमी जोड़ों को अमर करने वाली ये कथाएँ हैं। इन्हीं जातियों की ज़ुबान से 'रामायण' जैसी सरसता से गाए हुए प्रणय-वेदना भरे ये गीत हैं। ये अहीर आदि उन वर्णों में से हैं, जो एक नहीं अनेक बार परिणय कर छूटा-छेड़ा... तलाक लेने वाली जातियाँ हैं। धर्म-लोप, सतीत्व भ्रष्ट होने का इन्हें डर नहीं। ये तो पहाड़ की सन्तान हैं। पहाड़ की गोद में उछलने वाली ये जातियाँ भला लग्न-बन्धन मानने वाली हैं? ये होते हुए भी इन कथाओं का प्रमुख स्वर है—प्रेम की प्रामाणिकता का, अपने प्रेम-सहयोगी पर मर-मिटने का, स्वजन की देहली पर शोणित का सिंदूर चढ़ाने का, जिस पर एक बार अंतस्तल रीझा उस पर अपना सारा अपनत्व बिसार देने का। यहाँ शास्त्र भाष्यवाला सतीत्व नहीं, स्वतन्त्र आसक्ति है...

यह प्यार उन्मादमय, प्रथम दृष्टि वाला प्रेम है। नेसड़ा गाँव की रहने वाली आर्य कन्या नागमदे सवीआणा शहर के बाज़ार में अपने घर का बना-तपाया घी बेचने आती है, बणियों की हाट में नेसवासी सुन्दरियों का पूरा यूथ अपना-अपना घी बेच रहा है। एक-एक वीरना अपने नागवाले घोड़े पर चढ़कर निकलता है। सबके साथ नागमदे की दो आँखें भी, जिसका शौर्य बहुत सुना है, ऐसे शूरवीर को देखने लगीं। व्यापारी बनिये टीका-टिप्पणी करते हैं, 'ए बाई ज़रा इधर तो ध्यान रख। तेरे घी की धार किधर बही जा रही है। लुटिया में

तो गिरती ही नहीं।' तब यह प्रथम दृष्टि का प्रेम कितना उन्माद आतुर हो बोल उठता है— 'घेलया जावरे घी, आजूना उतारमां : धन्यवारो, धन्यदि निरख्यो वाला नागरे।' घी ढुल गया, रूप ढुल गया, विवेक ढुल गया, पहाड़-पुत्री का छलकता अंतर पहली ही बार उलट कर ढुलने लगा।

हम तब साबरमती जेल में थे। इनमें हम बीस जनों का गुट अलग था, इनमें से जब किसी का छुटकारा होता, हम लोग एक शाम पहले शिवरात्रि का मेला-सा जेल में मचा देते। गुजरात के उन बीस काव्य-रसिक, साहित्य-प्रेमी, संस्कारशील पुरुषों को मैंने ये गीत सुनाए। उसमें शेणी विजानंद के क़िस्से को कौन जवान भूल सकता है? कारावास के मेरे रसगुरु, महादेव देसाई और ऊँची उर्दू और संस्कृत रस-साहित्य के मस्त अनुरागी देवीदास गाँधी दोनों ने पहली ही बार इन सौराष्ट्री प्रेम-गीत कथाओं को सुना। शेणी विजानंद ने तो उन्हें मस्त बना दिया। पच्चीस सोरठों में बँधी यह कथा सोरठवासियों के स्नेह, समर्पण, विद्रोह, सद्‌भिरुचि और दर्दे दिल के श्वासों से भरी हुई है। कावसजी जहाँगीर हॉल में जब शहरवासियों ने ये गीत सुने, इनके जीवन में एक अनुभूत नवीन रोमांस-मस्ती का प्रवेश हुआ। इस कथा के पच्चीस-तीस सोरठों को बिलकुल निर्दोष काव्यगुणपूर्ण मानता हूँ। उच्च साहित्य के सब गुण उनमें हैं।

इस प्रेम-साहित्य से उपदेश लेने और सारसिद्धि प्राप्त करने का प्रयत्न व्यर्थ है। इनका चित्रदर्शन काफ़ी है। "तुम पानी हो, मैं पाल सरोवर का तीर हूँ। हम एक-दूसरे को आठों पहर गले लगाए हैं। प्रीति की यह सदा की रीति है। तुम साँप हो, मैं गरुड़। सच्ची प्रीति का घोड़ा इन नदी-नालों पर प्यास नहीं बुझाता, उसे तो गहरा झरना ही चाहिए। लाख ख़र्च कर, चाहे जो भोग चढ़ाकर जब दोनों पलड़े एक से होंगे तभी तो चीज़ ली जाएगी न? और बस, दो दिन की बातों में ही तुम न्यारे बन गए, बदल गए? तू बदला, मगर मैं? मैं तो जहाँ तुमने बैठा दिया, वहीं बैठी हूँ। मैं आम छोड़कर बबूल पर कैसे जाऊँ? चन्दन वृक्ष छूटने पर पक्षी को वन में और विश्राम कहाँ? अगर कपड़ा फट गया तो ताना-बाना जुड़ सकता है, सिया जा सकता है, परन्तु यहाँ तो कलेजा ही फट चुका; इसे टाँकने वाला तागा कहाँ है? तुम्हारे जीवित-काल में ही मुझे अनन्त वैधव्य, फ़िक्र नहीं, उसे पालूँगी। भगवा पहनकर दुनिया को और क्या दिखाऊँ? आत्मा तो मेरी संन्यासिनी बन चुकी है। तुम्हारे नाम का तावीज़ मैंने हाथ में बाँध लिया।" प्रीति के ऐसे कोमल भाव लोकगम्य सरल रूपकों में दोहों में जोड़े गए हैं। उनमें पहाड़ी कविता के संस्कार महकते हैं..... ❑

(सौ 'सोरठ गीत-कथाओं' की भूमिका 'पहाड़ोंनी गोद माँ' का एक अंश)



पंडित विजयशंकर मिश्र

हम तुम्हें यूँ भुला न पाएँगे

पिछले कुछ वर्षों से संगीत और नृत्य जगत की महान् विभूतियों के बिछुड़न का दर्द कम होने का नाम नहीं ले रहा है। पिछले दो महीनों में हमने संगीत और नृत्य जगत की छह महान् विभूतियों को खो दिया। यहाँ उन्हें और उनके कार्यों को एक बार पुनः स्मरण करते हुए उन्हें विनम्र श्रद्धांजलि अर्पित की जा रही है–



● पं. मणि प्रसाद कैराना घराने के स्वनामधन्य गायक थे। गायन की शिक्षा उन्होंने अपने पितामह पं. शक्ति लाल सहित पिता पं. सुखदेव प्रसाद एवं चाचा पं. शंकर लाल और पं. गोपाल प्रसाद से प्राप्त की थी। इनके पिता के प्रमुख शिष्यों में भारतरत्न लता मंगेशकर के पिता मास्टर दीनानाथ मंगेशकर भी थे। गायन की सभी विधाओं-ख़याल, ठुमरी, तराना, टप्पा और भजन आदि को गाने में इन्हें निपुणता प्राप्त थी। इन्होंने अनेक शिष्यों को भी तैयार किया जिन्होंने संगीत जगत में अपना महत्वपूर्ण स्थान बनाया। इनके शिष्यों में आशा भोंसले और उनके भाई हृदयनाथ मंगेशकर का भी नाम प्रमुख है।

इनके अलावा बड़ौदा के महाराजा रणजीत सिंह और प्रताप सिंह गायकवाड़, सविता देवी, रीता गांगुली, उमा गर्ग, रमेश जूले, रवि जूले, हरिचरण वर्मा, सुरेन्द्र कौर, कैलाश वर्मा, सुदर्शन दीवान, चन्दन दास, जितेंद्र सिंह जाम्बवाल, विश्वनाथ, निर्मला गोपालकृष्णन, सीमा अनिल सहगल, सरस्वती बाई, सन्त सतनाम सिंह और मोनिका ज्ञान सोनी जैसे अनेक स्थापित संगीतकारों ने इनसे शिक्षा प्राप्त की थी। भारत के लगभग सभी प्रतिष्ठित मंचों को अपने गायन से गुंजित कर चुके पं. मणि प्रसाद आकाशवाणी एवं दूरदर्शन के सर्वोच्च श्रेणी के कलाकार थे। उन्होंने 'ध्यानरंग पिया' नाम से कई रागों में विभिन्न प्रकार की सैकड़ों बंदिशों की रचना की थी। इनके द्वारा रचित रागों में ध्यान कल्याण, ध्यानी

सम्पर्क : *ई-मेल : anhad.sam@gmail.com*

तोड़ी, शिव कौंस, भूपेश्वरी और विहंगिणी आदि प्रमुख हैं। कुछ लोग अहिरी तोड़ी को भी इनके द्वारा रचित मानते हैं। मणि प्रसाद ने गजेंद्र सिंह के सा रे गा मा पा धा नि सा अकादमी में लम्बे समय तक संगीत की शिक्षा दी थी। बाद में कर्नाटक के हुबली शहर में स्थित गंगूबाई हंगल गुरुकुल में गुरु पद को सुशोभित किया। उन्हें कई मान-सम्मान मिले थे। इनके दोनों पुत्र दीपक प्रसाद और ललित प्रसाद तथा पुत्री लता टंडन भी संगीत कला से जुड़े हुए हैं। मणि प्रसाद ने मुम्बई में रहते हुए फ़िल्म जगत के कई लोगों को गायन में प्रशिक्षित किया।

13 जनवरी, 2023 को पंडितजी के अवसान के साथ एक ऐसे व्यक्तित्व का अवसान हुआ है जो अपने-आप में एक पूरी संस्था था। एक अच्छे गायक, एक अच्छे रचनाकार, एक अच्छे गुरु और एक अच्छे कार्यक्रम आयोजक, संयोजक के रूप में पंडितजी ने अपनी बहुमुखी प्रतिभा का परिचय कई बार दिया। मात्र 10 वर्ष की उम्र में मंच पर पदार्पण कर चुके पंडितजी अपने जीवन के अंतिम समय तक संगीत से जुड़े रहे, गाते रहे, सिखाते रहे और हर क्षण कुछ नया रचते रहे।



● पं. अभय नारायण मल्लिक दरभंगा घराने के सुप्रसिद्ध ध्रुपद गायक थे। वे गौड़हार वाणी का गायन करते थे जो तानसेन की परम्परा से सम्बन्धित है। पं. मल्लिक का जन्म 16 मई, 1922 को बिहार में प्रतिष्ठित संगीतज्ञों के परिवार में हुआ था। उन्होंने ध्रुपद गायन की औपचारिक शिक्षा महान् ध्रुपद गायक पं. राम चतुर मल्लिक से प्राप्त की थी। ध्रुपद के साथ-साथ ख़याल, ठुमरी, भजन और बिहार के लोक गीतों को गाने में भी वे पारंगत थे, लेकिन मंच पर उन्होंने सिर्फ़ ध्रुपद का ही गायन किया। आकाशवाणी एवं दूरदर्शन के सर्वोच्च श्रेणी के गायक मल्लिकजी भारत के सभी प्रतिष्ठित मंचों के साथ-साथ भारतीय सांस्कृतिक सम्बन्ध परिषद और दूसरी संस्थाओं के माध्यम से कई दूसरे देशों में भी भारतीय संगीत की कीर्ति पताका फहरा चुके थे। वे लम्बे अरसे तक इंदिरा कला संगीत विश्वविद्यालय (खैरागढ़) में संकाय अध्यक्ष के पद पर भी आसीन रहे। अनेक देशी-विदेशी कम्पनियों ने उनके प्रभावशाली गायन का ध्वन्यांकन किया है। उन्हें संगीत के विभिन्न पहलुओं का बहुत अच्छा ज्ञान है। उन्हें इस बात का भी श्रेय है कि मारधाड़, कर्कशता तथा नीरसता का पर्याय बन चुके ध्रुपद गायन में उन्होंने रस का संचार किया। शुद्ध वाणी और शुद्ध मुख्य मुद्रा उनकी ख़ास विशेषता थी। उनके कई शिष्य इस समय उनकी कला को आगे बढ़ाने का काम कर रहे हैं जिनमें सुमित आनन्द पाण्डे का नाम विशेष उल्लेखनीय है। पिछले दिनों कोरोना वायरस के कारण अपने युवा पुत्र संजय मल्लिक के असामयिक एवं आकस्मिक निधन से मल्लिकजी पूरी तरह टूट चुके थे। संजय के निधन के समय उन्होंने जो बिस्तर पकड़ा तो फिर उसके बाद उठ नहीं पाए और अंततः 25 जनवरी, 2023 को

इस संसार को अलविदा कह गए। उन्हें कई मान-सम्मान मिले थे जिसमें मध्य प्रदेश सरकार का कालिदास सम्मान और केन्द्र सरकार का संगीत नाटक अकादेमी पुरस्कार विशेष उल्लेखनीय है।



● पं. विजय किचलू को एक अच्छे गायक के साथ-साथ एक संगीत उन्नायक के रूप में भी बहुत आदर के साथ स्मरण किया जाएगा। उनका जन्म 16 सितम्बर, 1930 को अल्मोड़ा में हुआ था। उन्होंने ख़याल गायन की शिक्षा आगरा घराने के उ. लताफ़त हुसैन ख़ान से प्राप्त की थी। बाद में डागर बंधुओं से ध्रुपद गायन की भी शिक्षा प्राप्त की। अपने भाई रवि किचलू के साथ वे अपनी मंचीय प्रस्तुतियाँ दिया करते थे। पं. किचलू के मन में शुरू से ही संगीत के प्रचार-प्रसार की इच्छा थी। कोलकाता में रहते हुए उन्होंने व्यक्तिगत स्तर पर संगीत के प्रचार-प्रसार के लिए कई काम किए। बाद में उनकी मुलाक़ात इंडिया टोबैको कम्पनी के मालिक और अधिकारियों के साथ हुई जिनके साथ मिलकर उन्होंने संगीत के प्रचार-प्रसार के अपने स्वप्न को फलीभूत करने के लिए ठोस और सार्थक क़दम उठाए। इंडिया टोबैको कम्पनी के साथ मिलकर उन्होंने संगीत अनुसंधान अकादमी की स्थापना कोलकाता में की जो आई.टी.सी. संगीत रिसर्च एकेडमी के नाम से ज़्यादा लोकप्रिय है। यह आधुनिक भारत का एक ऐसा संगीत गुरुकुल है जहाँ महान् गुरुओं के सान्निध्य में प्रतिभावान शिष्यों को संगीत शिक्षा प्राप्त करने के स्वर्णिम अवसर प्रदान किए जाते हैं। पं. किचलू ने न केवल इस संस्था की स्थापना में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई बल्कि 25 वर्षों तक इसका नेतृत्व भी किया। पं. किचलू ने इस संस्था के माध्यम से प्राचीन गुरुकुल संगीत परम्परा को आधुनिक रूप में जीवन्त कर दिया है, जहाँ सीखने, लिखने और रिकॉर्डिंग करने की सारी व्यवस्था त्वरित तौर पर हर समय, हर किसी के लिए मौजूद रहती है। संगीत के प्रचार-प्रसार के अपने इस स्वप्न को साकार करने के लिए पं. किचलू ने अपने संगीत कैरियर को भी दाँव पर लगा दिया। इस महान् कार्य के लिए उन्हें भारत सरकार की ओर से पद्मश्री और संगीत नाटक अकादेमी पुरस्कार जैसे महत्वपूर्ण सम्मान मिले ही, कई दूसरी संस्थाओं ने भी उन्हें सम्मानित करके उनके प्रति अपनी कृतज्ञता व्यक्त की है। 17 फरवरी, 2023 को 93 वर्ष की उम्र में नाद ब्रह्म का यह साधक ब्रह्म में विलीन हो गया।



● केरल प्रान्त में ही सीमित रहे जिस मोहिनीअट्टम नृत्य की आज हम भारत के शास्त्रीय नृत्यों में गणना करते हैं और जो अब अंतरराष्ट्रीय स्तर पर भारतीय शास्त्रीय नृत्य के रूप में अपनी पहचान बना चुका है, उसे यह स्थान दिलाने का बहुत बड़ा श्रेय विदुषी कनक रेले को है। 11 जून, 1937 को जन्मीं कनक रेले ने गवर्नमेंट लॉ

कॉलेज मुम्बई से क़ानून की उच्चस्तरीय पढ़ाई की थी। उन्होंने यूनिवर्सिटी ऑफ़ मैनचेस्टर से इंटरनेशनल लॉ में भी डिप्लोमा प्राप्त किया था लेकिन, उनका मन रमता था नृत्य में। बचपन से ही उनकी नृत्य में विशेष रुचि थी। अतः उन्होंने मोहिनीअट्टम के प्रख्यात गुरुओं और उपेक्षित जीवन जी रहीं देवदासियों से इसकी उच्चस्तरीय शिक्षा प्राप्त की। इसके लिए उन्हें जगह-जगह भटकना पड़ा था। तब तक मोहिनीअट्टम को शास्त्रीय नृत्य के रूप में मान्यता प्राप्त नहीं थी। यह लोक रंजन का एक सतही माध्यम मात्र था। कनकजी ने इसका व्याकरण बनाया और लिखा, एकल नृत्य के रूप में इसकी सम्पूर्ण मंचीय प्रस्तुति किस तरह से हो, उसकी पूरी रूपरेखा तैयार की जिसके लिए इसके कई गुरुओं से जो पढ़े-लिखे नहीं थे, गाँवों में रहते थे, उपेक्षित ज़िन्दगी जी रहे थे, उनसे मिलकर इसकी ठोस जानकारियाँ लीं। फिर, इसी विषय पर उन्होंने अपना शोध कार्य किया। मोहिनीअट्टम में पीएच. डी. करने वाली वे पहली नृत्यांगना थीं। कनकजी ने इसे शास्त्रीय नृत्य के रूप में स्थापित करने के लिए लम्बा संघर्ष किया। उन्होंने मोहिनीअट्टम विषय पर कई किताबें भी लिखी जो अंग्रेज़ी में उपलब्ध हैं।

मुम्बई में नालंदा डांस रिसर्च सेंटर की वे संस्थापक निदेशक थीं तो नालंदा नृत्य कला महाविद्यालय की संस्थापक प्राचार्य भी। उन्हें पद्मश्री एवं पद्मभूषण जैसे कई अलंकरण मिले थे। उन्होंने नारी समस्याओं, अस्पृश्यता और दूसरे सामाजिक मुद्दों पर नृत्य संरचनाएँ तैयार करके समाज-सुधार की दिशा में भी महत्वपूर्ण क़दम उठाया था। 22 फरवरी, 2023 को उनका निधन एक महान नृत्यांगना, एक सिद्धहस्त लेखिका, एक नृत्य गुरु, एक नृत्य प्रचारक और एक विचारक का भी अवसान है।



● 18 फरवरी, 2023 की शाम, बनारस घराने के प्रतिनिधि कथक नृत्याचार्य गुरु जितेंद्र महाराज का दुखद अवसान हो गया। वे पिछले कुछ दिनों से बीमार चल रहे थे और उच्च चिकित्सा हेतु एक अस्पताल में भर्ती थे। जितेंद्र महाराज कथक नृत्य में सात्विकता के पक्षधर थे। इसीलिए उन्होंने इसकी दरबारी शैली को न अपनाकर मन्दिर की शैली को अपनाया। वे महाराज कृष्ण कुमार के वरिष्ठ शिष्य थे। धार्मिक और आध्यात्मिक भावों से परिपूर्ण जितेंद्र महाराज ने भारत में कश्मीर से कन्याकुमारी तक के सभी प्रसिद्ध मन्दिरों में नृत्य किया था। उन्होंने भारत के 12 ज्योतिर्लिंग, 18,000 फ़ीट की ऊँचाई पर स्थित कैलाश मानसरोवर, इस्कॉन टेंपल के विभिन्न मन्दिरों और बौद्ध धर्म के मठों में भी अपने नृत्य की जोत जलाई थी। वृंदावन के बाँके बिहारी मन्दिर के साढ़े पाँच सौ साल के इतिहास में वहाँ नृत्य करने वाले वे प्रथम कलाकार थे। विभिन्न देशों के मन्दिरों में जाकर भी उन्होंने अपने घुँघरुओं की रुनझुन से वहाँ के ईश्वर की आराधना की थी। सात्विक भावों से ओतप्रोत बनारस घराने के नृत्य में तबले-

पखावज के बोलों की अपेक्षा घुँघरुओं के बोलों को अधिक महत्व दिया जाता है। यहाँ की रचनाओं में भी आध्यात्मिक भाव भरे होते हैं। अनेक देशी-विदेशी विश्वविद्यालयों से अतिथि प्राध्यापक के रूप में जुड़े जितेंद्र महाराज ने दिल्ली में संगीतिका इंस्टीट्यूट नामक एक संस्था की स्थापना की थी जहाँ नृत्य की उच्चस्तरीय शिक्षा प्रदान की जाती है। वे सर्वोच्च श्रेणी के अनुमोदित नृत्यकार थे। अपनी एकल प्रस्तुतियों के साथ-साथ उन्होंने अनेक विषयों पर नृत्य संरचनाएँ भी तैयार की थीं। उनके अनेक शिष्य-शिष्याएँ कथक नृत्य के प्रचार-प्रसार में संलग्न हैं, जिनमें विदुषी कमलिनी अस्थाना और विदुषी नलिनी अस्थाना का नाम सर्वोपरि है। उन्हें कालिदास सम्मान, उत्तर प्रदेश संगीत नाटक अकादमी सम्मान, नृत्य वाचस्पति सम्मान, नाट्य ब्रह्म शिरोमणि सम्मान और केन्द्रीय संगीत नाटक अकादेमी सम्मान सहित कई मान-सम्मान मिल चुके थे।



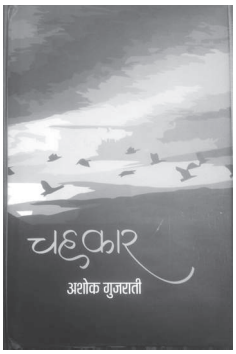
● सुप्रसिद्ध पार्श्व गायिका वाणी जयराम का निधन चार फरवरी 2023 को हुआ। वे अपने घर में मृत पाई गई थीं और उनकी मृत्यु के रहस्य पर से अभी भी पर्दा नहीं उठ पाया है। 1945 में तमिलनाडु के वेल्लौर में जन्मीं वाणी जयराम का वास्तविक नाम कलैवानी था। उनके माता-पिता भी संगीत अनुरागी थे। वाणी जयराम को बचपन से ही गाने का शौक था और उन्होंने मात्र आठ वर्ष की उम्र से आकाशवाणी पर गाना शुरू कर दिया था। रामानुजा अयंगार से उन्होंने गाना सीखा था। उन्होंने कैरियर की शुरुआत बैंक में नौकरी से की थी, लेकिन जब जयरामजी से उनका विवाह हुआ और उन्होंने उनका गाना सुना तो उन्होंने वाणीजी को गाने में कैरियर बनाने का सुझाव दिया और इसके लिए काफ़ी सहयोग भी किया। विभिन्न भाषाओं पर उनका अच्छा अधिकार था। हिन्दी, उर्दू, तमिल, तेलुगु, कन्नड़, मलयालम, मराठी, बंगाली, भोजपुरी, तुलु, उड़िया तथा राजस्थानी आदि जैसी लगभग 19 भाषाओं में दस हज़ार से अधिक गीतों को उन्होंने गाया था। हिन्दी फ़िल्मों की बात करें तो बॉलीवुड की लगभग 100 फ़िल्मों से वे जुड़ी रहीं और उनके 339 गानों का उल्लेख मिलता है। वाणीजी भक्ति गीतों की सर्वाधिक लोकप्रिय गायिका थीं। भक्ति संगीत के लिए पं. रविशंकर से लेकर पं. मोहिंदर सरीन तक की वे प्रथम पसन्द हुआ करती थीं। उन्होंने मंचीय कार्यक्रमों में भी भक्ति संगीत की प्रस्तुति दी थी। उन्हें तीन बार सर्वश्रेष्ठ महिला पार्श्व गायिका का राष्ट्रीय फ़िल्म पुरस्कार मिला था, तीन बार फ़िल्मफ़ेयर पुरस्कार मिला था। इसके अलावा तमिलनाडु, महाराष्ट्र, आंध्र प्रदेश, केरल, गुजरात और उड़ीसा आदि राज्यों से भी संगीत के क्षेत्र में उनके महत्वपूर्ण योगदान को देखते हुए राज्य पुरस्कार मिले थे। वाणीजी के लिए पिछले ही दिनों भारत सरकार ने पद्मभूषण के अलंकरण की घोषणा की थी लेकिन दुख की बात है कि अलंकरण प्राप्त करने के पहले ही वे हमसे जुदा हो गईं। ❑



प्रमोद शुक्ल

अछूता हृदयस्पर्शी आख्यान

अत्यंत स्वाभाविक प्रवाह-शैली और कथानक के सामंजस्य को लेकर पाठक को सतत बाँधकर रखने वाला रोचक उपन्यास 'चहकार' है। यह कथ्य में समाज की एक ज्वलंत समस्या की प्रस्तुति है जिसमें महाराष्ट्र प्रान्त के बुलढाना ज़िले से दिल्ली तक की सामाजिक स्थितियों और मनोवृत्तियों का विस्तृत और वस्तुपरक वर्णन है। इन सबको दर्शाने के लिए शिल्प, कथा व पात्रों का सहज निर्वहन हुआ है।



जैसाकि आमतौर पर देखा जाता है, उपन्यास में तथ्यात्मकता लाने की दृष्टि से जिस अंचल की पृष्ठभूमि पर लिखा गया होता है, आवश्यकता के अनुरूप वहाँ के रीति-रिवाजों तथा बोली का उपयोग किया जाता है। लेखक ने इस उपन्यास में उसका पूरा ध्यान रखा है। क्लिष्टता एवं जड़ता नहीं आने दी है। उपन्यास महाराष्ट्र के विदर्भ के परिवेश में जब चलता है उसमें मराठी भाषा के शब्दों का प्रयोग किया गया है। मराठी भाषा हिन्दी की निकटस्थ भाषा होने के कारण दुरूहता का बोझ पाठकों के हिस्से में नहीं आता। जहाँ कठिन शब्द हैं, उनका अर्थ दिया गया है। यह भाषाई सजगता लेखक के पक्ष में सराहनीय कही जा सकती है।

वैसे तो उपन्यास के सभी पात्र समाज के बीच से ही उठाए हुए हैं पर नौबू का पात्र पूरे उपन्यास में उसकी उम्र की वृद्धि के साथ निभा पाना आसान नहीं था। एक गूँगे-बहरे चरित्र को लेखक ने बेहद संवेदनशीलता और यथार्थ के धरातल पर चित्रित किया है। इसी प्रकार अंग-भंग कर भीख मँगवाने का धंधा समाज की एक भीषण प्रश्नाकुलता है जिसे आख्यान का मूल भाव बनाया गया है और यही सार-तत्त्व इस उपन्यास का है। कथानक दीर्घ ज़रूर है लेकिन आरम्भ से अंत तक

***सम्पर्क** : ई-मेल : dr.pramodshukla.ps@gmail.com*

अद्वितीय कसाव है। कहीं भी कथा न तो ढीली पड़ती है न ही बहकती है।

पिछले कई दशकों से अशोक गुजराती की असंख्य कहानियाँ प्रकाशित होती रहीं, सराही भी गईं। इस बार वह अपना पहला उपन्यास लेकर हाज़िर हुए हैं। इसे पढ़ने के पश्चात यही ख़याल आता है कि इस विधा को उन्होंने इससे पूर्व क्यों नहीं अपना लिया... असल में इधर कई वर्षों से ऐसे उपन्यास कम ही आए हैं, जिन्हें कालजयी कहा जा सके। ऐसा भी नहीं कि यह क्षेत्र बिलकुल अनुर्वर रहा हो। विवेकशील उपन्यास आए किन्तु सम्भवतः पाठकों में उतनी पैठ नहीं बना पाए। ऐसे शून्य काल में अशोकजी का यह उपन्यास अपनी जगह बनाने की उम्मीद जगाता है।

इस कथा-सागर में उन निर्धनों की, उन अनाश्रितों की, उन दलितों की बेकसी को शब्द दिए गए हैं, जिन्हें समाज वितृष्णा से देखकर नज़रअंदाज़ करता रहता है। फिर भी कुछेक भले लोगों की जमात बची हुई है जो इन्हें सहारा देते हैं। जीवन का एक लक्ष्य उपलब्ध करा देते हैं। वर्ना ऐसे बेबस इनसानों में छिपे गुणों का ख़ात्मा सुनिश्चित है। इस उपन्यास के गूँगे-बहरे नौबत जैसा अवसर उनको मिल जाए अन्यथा... भिखारियों की दुर्दशा किसी से छिपी नहीं है। इनका व्यवसाय कर रहे स्वार्थियों को देशद्रोही न कहा जाए तो और क्या..? किसी के पास फ़ुर्सत नहीं है कि भिखारियों की ज़िन्दगी की विडम्बनाओं को जानने की चेष्टा करे। हो सकता है कहीं इस उपन्यास के पात्रों की दुखद स्थितियाँ उन्हें थोड़ा जागृत कर दें, ज़िम्मेदार बना दें...।

उपन्यास का द्वार जब खुलता है। तो आरम्भ में ही दस-ग्यारह वर्षीय नासमझ अनुसूया एवं फ़कीरा का किशोर-वयीन प्रणय-प्रसंग मन को लुभा लेता है। फेकू जब सुइया के तलुए में चुभे काँटे के कारण उसे अपनी गोद में उठा लेता है, उन नादानों में भी प्रेमपूर्ण सखा भाव उमड़ पड़ता है। जैसे ही वे घर के पास पहुँचते हैं, सुइया उसे नीचे उतार देने को कहती है। यहाँ लेखक की टिप्पणी ग़ौरतलब है। "दोनों की जो नज़दीकी बनी हुई थी, उन बच्चों को कैसे सतर्क कर गई कि लोग देखेंगे तो क्या कहेंगे, हमको दूरी बना लेनी चाहिए..."

बड़े होने पर उनके विवाह में अड़चन पैदा करती है उनकी उपजाति। जातियों का भेदभाव तो ज़ोर-शोर से होता रहता है किन्तु लोग अपनी उपजातियों के बारे में भी किस क़दर कट्टर होते हैं, यह मुद्दा उठाया गया है। शादी के पश्चात उनका निर्धनता से संघर्ष काफ़ी विचलित करता है। अलग-अलग काम कर वे अपनी आजीविका चलाते हैं। कहीं कोई स्थायित्व नहीं आ पाता उनके जीवन में... कैसे-कैसे जी रहे हैं लोग, यह गहनता से कचोटता रहता है। उनके बच्चों–पलटू, सिमता और नौबत की आयु बढ़ने पर उनसे आर्थिक बोझ सम्भाले नहीं सम्भलता। गूँगे-बहरे नौबत के मनोरंजन हेतु लेखक ने कई स्थानीय साधनों का दिलचस्प ब्योरा दिया है। सिमता की रुचि पढ़ने में है पर नीम पर चढ़े करेले की तरह पलटू आवारा निकल जाता है। गाँजे के नशे में वह एक रोज़ नौबत, जो उसका आदेश सुनने में असमर्थ था, को बुरी तरह पीट देता है।

परिणामतः सुकोमल नौबू उस अवसाद की धुँध में इतनी कम उम्र में अपना घर छोड़ देता है। ट्रेन में चढ़ने पर माँ-समान रहमदिल तरन्नुम उसे सहेज लेती है। वह वेश्या है। उनके आवास के अजीब-से अनुभवों से नौबू बौरा जाता है। तभी तरन्नुम का संरक्षक महेन्द्र उसे अपहृत कर अपने फ़ार्म-हाउस पर ले जाकर रखता है। जहाँ उसे अपने आर्थिक स्तर के चौकीदार के परिवार से भरपूर स्नेह मिलता है। कुछ ही दिनों में महेन्द्र उसे भिखारियों की ख़रीद-फ़रोख़्त करने वाले को बेच देता है। यहाँ से शुरू होता है नौबू का दारुण परिस्थितियों से सामना। कहने को वहाँ उसे दो स्नेहिल साथी मिल जाते हैं। वे इस कारा में किस तरह पहुँचे, यह उनके उस अतीत की कहानियाँ बताती हैं कि एक वक़्त के ख़ुशहालों का भटकाव उन्हें इस नर्क में कैसे ले आता है। फिर अपने मतलब के लिए भिखारियों की गैंग चलाने वाले ये हैं। किस प्रकार विकलांग-यहाँ तक कि अंधे-बनाकर उनसे भीख मँगवाते हैं, इसका दिल दहला देने वाला एक मार्मिक दृश्य आँखों में आँसू ले आता है।..

"एक दसेक साल का लड़का छटपटा रहा था और उसे दो लोग कसकर पकड़े हुए थे। तीसरा उनके पीछे खड़ा था। उसके गले में स्टेथोस्कोप लटक रहा था। वह बेक़ाबू हुआ जा रहा था तो पहले ने उसकी कनपटी पर दो-तीन थप्पड़ जड़ दिए। इससे वह आँसू बहाता हुआ निःशब्द निढाल एक ओर लुढ़क गया। दूसरे ने उसकी बग़ल में अपनी सख़्त हथेलियाँ फँसाकर उसे खड़ा किया। पहले ने चाक़ू निकाला और ज्यों किसी दुश्मन के पेट में छेद कर रहा हो, उसकी दाईं आँख के कोटर में पूरी ताक़त से घुसेड़ दिया... उसकी आँख से ख़ून का एक तेज़ फ़व्वारा-सा उमड़ पड़ा। वह अपनी हथेली से पलकों को दबाकर चीत्कार करता उस भयंकर पीड़ा को रोकने की असफल चेष्टा करने लगा।

वह इस त्रास को सहने के यत्न में था कि तभी पहले ने अब चाक़ू उसकी बाईं आँख में ऐसे घुमाया, मानो किसी के जन्मदिन का केक काटने के लिए गहराई नापकर उसको आड़ा चलाकर बड़ा-सा टुकड़ा काट रहा हो। उधर से भी लहू की बौछार बेतरतीब-सी ज़मीन को फोड़कर बाहर उड़ रहे झरने-सी उस बालक के पूरे शरीर पर बिखर-बिखर गई। उसका दूसरा हाथ उस अंतहीन कष्ट से प्रसृत अंतर्गुहार के साथ अपनी आँख की ओर बढ़ भी नहीं पाया और वह अचेत होकर धराशायी हो गया।"

ख़ैर, ख़ैर करके माधव नाम का एक बूढ़ा उनकी मुक्ति के लिए कारणीभूत होता है। अपने बेटे-बहू से विरक्त वह भी भीख ही माँगता है। लेकिन वही दयार्द्र उनका ख़ैरख़्वाह बन जाता है। एक अंतराल के बाद कर्त्तव्यनिष्ठ सिफ़त और विप्लव, जो एक सेवाभावी एनजीओ चलाते हैं, उनकी नज़र में नौबू आ जाता है। यहीं से उसके जीवन को अर्थ मिलने लगता है। वह एक महत्वाकांक्षी उत्कृष्ट शिल्पकार के रूप में उभरने लगता है। उसकी यह कला-यात्रा आहिस्ता-आहिस्ता सिफ़त, विप्लव और माधव के मार्गदर्शन में अपना लक्ष्य गाँठने की ओर निरन्तर बढ़ती रहती है। वह बोल-सुन नहीं पाता लेकिन अपनी याद्दाश्त से उसके साथ हुई घटनाओं

तथा ज़िन्दगी में आए व्यक्तियों की मूर्तियाँ बनाने में खोया रहता है।

इसी दौरान उसे एनजीओ में कार्यरत एक युवती से लगाव हो जाता है। धीरे-धीरे यह समीपता उनके प्यार में रूपांतरित हो जाती है। वह उसकी शिल्पकारी के लिए प्रेरक साबित होती है। नौबत उसकी भी हूबहू प्रतिमा गढ़ लेता है। नौबत को अपनी मूर्तियों के प्रदर्शन के उपरांत पुरस्कार भी मिलता है। उसका यह विचित्र-सा सफ़र उसे कहाँ-से-कहाँ ले आता है।.. एक विकलांग भी अपनी मंज़िल पा सकता है। यदि उसमें जिजीविषा हो- लेखक ने इसी सच्चाई को उजागर किया है। अंततः उसकी मुलाक़ात अपने परिजनों से हो जाती है। कैसे, यह कोई पढ़कर जाने तो अधिक न्यायोचित होगा।

अवांतर कथाओं में पलटू की फ़ितरत एकदम से बदल कर उसे शिक्षित तथा समझदार बना देती है। अब उसका नाम श्रमण है। यह क्योंकर हुआ?.. प्रेम में वह ताक़त है। जो कायापलट करने में माहिर होती है। सवर्ण स्वस्ति को उस दलित से प्यार हो जाता है। दोनों का परिणय नहीं हो पाता परन्तु वे सब कुछ पा जाते हैं। जब स्वस्ति विवाह के एक वर्ष पश्चात् अपने शिशु को लेकर वापस आती है। तब...

"उस नाजुक बच्चे के गालों का स्पर्श कर वह उसे ग़ौर से निहारता रह गया।

'क्या हुआ श्रमण, क्या ताक रहे हो एकटक... उसकी मासूम सूरत के उतार-चढ़ाव?'

श्रमण चमत्कृत-सा पीछे घूमा, 'स्वस्ति, तुम कहना क्या चाहती हो?'

'वही, जो तुम समझ रहे हो।'

'क्या?'

'ऐसे भोले भी न बनो। तुम्हें उसकी शक्ल में कोई और शक्ल नज़र नहीं आ रही?'

'क्यों नहीं आएगी? स्वस्ति, मेरे अंतिम उपहार को सहेजकर तुमने रूढ़िवादियों को करारा थप्पड़ मार दिया है।"

इसी तर्ज़ पर लेकिन इससे उलटे दलित सिमता का सवर्ण अबिताब से इश्क़ अपनी ऊँचाइयों को छू लेता है।.. 'सिमता-अबिताब अंदरूनी तहों तक जुड़ चुके थे। उनका लगाव अंतरंग तथा बाह्य विनिमय की तलाश में था। तलाशेगा तो तय है कि मिलेगा। मिला... फलस्वरूप प्यार के खाते में शत-प्रतिशत मुनाफ़ा दर्ज हुआ। उनके मध्य के दैहिक अंतर की दीवार ऐसे ढह गई, ज्यों उनके मन की पर्तों में दबा भूचाल उसके कण-कण को हिला गया हो। अब वे रागात्मकता की नदी में कश्ती खेने लगे थे...।'

अशोक गुजराती में भाषा की पकड़ है। जितनी संजीदगी से वे असहायों की विसंगति को शब्द देते हैं, उतनी ही कशिश से प्रेम प्रसंगों से रोमांच उत्पन्न करते हैं। इस उपन्यास में और भी बहुत कुछ मर्मस्पर्शी और श्लाघनीय है जिसे समीक्षा के अंतर्गत नियोजित कर पाना कठिन है। ❑

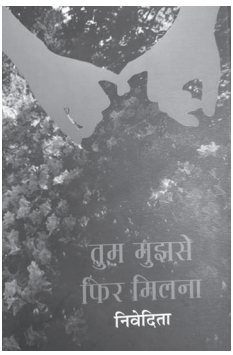
(कृति : 'चहकार' (उपन्यास);
लेखक : अशोक गुजराती;
प्रकाशक : सामयिक प्रकाशन, 3320-21,
जटवाड़ा, दरियागंज, नई दिल्ली-110002;
पृष्ठ : 192 ; मूल्य : 500 रुपये)



वैद्यनाथ झा

नदियाँ ब्याह नहीं करतीं ....

कुछ समय पूर्व 'तुम मुझसे फिर मिलना' काव्य-संग्रह प्रकाशित हुआ है। इस काव्य-संग्रह की कवयित्री निवेदिता हैं। निवेदिता हिन्दी और मैथिली दोनों में कविताएँ लिखती हैं। हिन्दी में उनका यह पाँचवा काव्य-संग्रह है। समकालीन हिन्दी कविता में स्त्री-विमर्श के विभिन्न पहलुओं को केन्द्र में लाने वाली कवयित्रियों में अपनी रचनाओं की गुणवत्ता, काव्य-चयन और व्यंजना शिल्प के दम पर निवेदिता अग्रिम पंक्ति में अपना स्थान बनाती हैं। स्त्री-मन के गूढ़ मनोभावों, संवेदना, कोमलता, धैर्य, सृजनशीलता जैसे पक्ष उनकी हर कविता में प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से उपस्थित रहते हैं।



निवेदिता प्रेम की कवयित्री हैं। वे प्रेम का महाकाव्य रचती हैं। उनके लिए प्रेम जीवन के अस्तित्व के लिए आवश्यक शर्त है। वे प्रेम की विविध अवस्थाओं एवं रूपों को संजीदगी से कविताओं में उकेरती हैं। इस संग्रह में कहने को तो पाँच कविताएँ प्रेम पर हैं। एक 'प्यार' शीर्षक से और चार 'प्रेम' से, पर यह प्रेम तत्त्व लगभग सभी कविताओं में छाया रूप से उपस्थित है। 'प्यार' प्रेम का ही वाचाल रूप है- 'तुम्हारे लिए तारे तोड़ लाऊँ, या पहाड़ का सीना चीरकर दरिया बहा दूँ' जैसे वादे, मनुहार, रूमानियत भी मिलते हैं-

'तुम जूड़े बनाती हो तो/ कहने लगते हैं चम्पा, गुलाब और अपराजिता/ कि सजने दो आज अपनी वेणी में मुझे....

मगर तुमने ऐसा कुछ नहीं कहा/इसके सिवा कि मैं और तुम एक हैं।' ('प्यार')

उनका प्रेम आंतरिक संवेग, मूक अभिव्यक्ति, सब कुछ अंदर समेट लेने की व्याख्या करता है, बात-बात में 'आई लव यू' का शोर नहीं करता-

'तुमने जब आँखें बन्द की/मैंने समेट लिया समय'।

यथार्थ को एक क्षण भी ओझल न होने देती कवयित्री प्रेम के 'सोशल ऐप्लीकेशन' पर भी तंज़ कसती हैं...

सम्पर्क : *ई-मेल : vaidyanath1949@gmail.com*

'किसको प्रेम कहती हो तुम सब?/ साल दर साल माँ बनती तुम सब/पहचानती हो बसंत/दिखा है पलाश का रंग/ जो तुम्हारी आँखों में भी उतरना चाहता है'।

संघर्ष, पीड़ा, संकट में यह प्रेम और निखरता है। रचनाशीलता और बढ़ जाती है। उनके प्रेम में सृजन है-

'तुम मुझे वहाँ रखना/जहाँ मिट्टी में नए पौधे के अंकुर होने के चिह्न हों।'

वह कहती हैं-

'गंगा में मत बहाना मेरी यादें/आसमान में पतंग की तरह उड़ाना भी नहीं'। ('मेरे जाने के बाद')

निवेदिता की काव्यात्मा का दूसरा पक्ष है स्त्री-यही बात कवि राकेशरेणु अपने कविता-संग्रह 'उसी से बचा जीवन' में कह चुके हैं। उनकी दृष्टि में स्त्री प्रेम पर्याय है। 'स्त्रियों से बचा रहा प्रेम पृथ्वी पर/प्रेममय जो है/ स्त्रियों ने रचा'/ राकेशरेणु की यह पंक्ति किसी पुरुष-कवि द्वारा किया गया विरल कवितात्मक बयान है– 'मैं स्त्री होना चाहता हूँ।' यह उनकी दृष्टि है। निवेदिता की समस्त काव्य-सृजन में यही प्रवृत्ति मिलती है। एक स्त्री ही स्त्री मन की अनुभूति, आकांक्षा और स्थिति को बेहतर और ईमानदारी से समझ सकती है। जीवन के हर सूक्ष्म और स्थूल स्थलों पर स्त्री की भूमिका होती है फिर भी यह समाज, विशेषकर पितृसत्तात्मक समाज उसकी अनुभूतियों, इच्छाओं एवं क्षमता को तरजीह नहीं देता। सब कुछ करने के बाद भी वह दोयम दर्जे की स्थिति में रहती है। उसके हिस्से में आती है विसंगति, पराधीनता, असंतोष, बेचैनी और बन्धन। कवयित्री इन्हीं सबके विरुद्ध स्त्री के पक्ष में कविता का मुँह खोलती है।

इस कविता-संग्रह में भी स्त्री की रचनात्मक एवं धारित्री-भूमिका (सहनशीलता), तमाम तरह की सामाजिक, पारिवारिक जद्दोजहद को दरकिनार कर 'दिल पर न लेते हुए' सब कुछ ठीक रखने की प्रक्रिया जारी रखने की बात की गई है। उन्होंने इधर की कविता की स्थिति पर बात करते हुए स्त्री को 'हौसले की मूर्ति' कहा–

'जब सारे मूल्य खंडित हो रहे हों/ आतंक और कोहरे के मुहाने/बैठी हो संवेदना/ लिपि में सिमट नहीं पा रही हो भाषा

.... पंख टूटने के कगार पर हों... और अंतहीन हौसला लिए/स्त्री बन जाती है पूर्ण कविता।' ('कविता')

स्त्री का भी अपना आकाश होता है, पंख होते हैं, उड़ने का हौसला और हसरत होती है, पर वह आकाश उसके लिए मुक्त नहीं रह पाता। उसे भी वायु सीमा में लौटा दिया जाता है। उड़ान के लिए सीमा प्रतिबन्धित कर दी जाती है पर वह तो मुक्त उड़ान चाहती है।

कवयित्री स्त्री के पूर्णमुक्ति की कामना करती है। विवाह को भी वह बंधन मानती है क्योंकि विवाह के बाद ही नए सम्बन्धों की ओर से निषेधात्मक नियन्त्रण शुरू हो जाते हैं अर्थात् हौसलों के पर कतरने शुरू हो जाते हैं तो वे कहती हैं, "नदियाँ ब्याह नहीं करतीं/ बहती हैं निर्भय होकर चाहे कितनी दूर हों...

'ज़िन्दगी है अपनी है/बस और जीने दो।'

एक कविता में वह लिखती हैं, 'इज़्ज़तदार घरों में नहीं पूछी जाती/ पसन्द कभी बेटियों की/सपाट चेहरे लिए पिता/बड़े जतन से मोल लाते हैं' ('अकेली लड़की कमज़ोर नहीं होती)'

इस संग्रह में 'मणिकर्णिका' शीर्षक से चार कविताएँ हैं। इन कविताओं में भी कवयित्री के मन-मस्तिष्क पर स्त्री की स्थिति हावी रही। उनके दर्शन पर साक्ष्य हावी हो

जाता है। वह लिखती हैं-

'मृत्यु कठिन नहीं, जीवन कठिन है'...

'मोक्ष अगर मणिकर्णिका में मिलता है तो/स्त्रियों के हिस्से बनारस आना चाहिए।' ('मणिकर्णिका-2')

यहाँ बनारस को जीवन का प्रतीक कहा गया है –सुखद और बन्धनहीन जीवन। मणिकर्णिका मृत्युस्थल है, मृत शरीर का दाह स्थल। उन्होंने साफ़-साफ़ लिखा है–

'दुनिया में एक ही नियम है/स्त्री को मिलती है मृत्यु/पुरुष को मोक्ष'। ('मणिकर्णिका')

जबकि दर्शन के अनुसार पुरुष और स्त्री आत्मा की ही दो मूर्त अभिव्यक्तियाँ हैं। आत्मा के स्तर पर कोई भेद नहीं है पर मृत्यु एक दारुण, सतत् पीड़ा है जो सभी के हिस्से आती है, तो मोक्ष उस पीड़ा से बच निकलने की प्रक्रिया जो पुरुष के हिस्से आती है।

'मणिकर्णिका' जैसी शुष्क दार्शनिकता वाली कविताओं में भी स्त्री कवयित्री की काव्य-चेतना में भी स्त्री ही सर्वोच्च प्राथमिकता पर है।

कवयित्री जीवन की प्रबल पक्षधर है। गहन उदास क्षणों में वह खुशी की किरण देख लेती है। जीवन के अस्तित्व के विरुद्ध खड़े तमाम हालातों की भीषणता में भी वह आशा की किरण ढूँढ लेती है-

'कौन समझाए किसे/जीवन है तो इसमें सुबह भी है और शाम भी/आदि है और अंत भी।'

प्राकृतिक आपदाओं, कोरोना महामारी जैसे जनविनाश के घोर निराशाजनक क्षणों के बाद भी जीवन के अँखुआते रहने -'दिन बहुरंगे ज़रूर' की प्रबल आकांक्षा एवं दृढ़ विश्वास जीवन के प्रति उतस्मा व विश्वास का ही प्रतीक है। 'सब गुज़र जाएगा' कविता में वह कहती हैं-

'आकाश से उतरेगा चाँद/धरती हरियाली से भर लेंगी बाँहें....

सारे चट्टानों पर घास उग जाएँगे/उसके ओट में छिपे बोरे में बारूद बह जाएगा ..... शहरों में शान्ति/हँसते मिलेंगे लोग।'

जीवन के प्रति प्रबल आशावादी दृष्टिकोण ही तो जिजीविषा है। तमाम विपरीत परिस्थितियों को हराते हुए जीवन किरण की तलाश ज़रूर होगी, कविता यही तो आश्वस्त करती है-

'कहो कि/मुश्किल नहीं है दुःख से निकलना/चाहे रात कितनी गहरी हो।'

जीवन के प्रति इतने उत्कट अनुराग का ही फल है कि कवयित्री युद्ध को विभीषिका मानती हैं। वह विचलित हो उठती हैं कि युद्ध मतलब बर्बादी, मौत का ताण्डव अर्थात् जीवन को ख़तरा/युद्ध जीवन का अपरिहार्य शत्रु है। उन्होंने 'सीरिया' कविता में इसी विभीषिका की बात की है–

'तितलियाँ उड़ गईं/फूलों की पंक्तियाँ तितर-बितर

दूर उड़ते पक्षी चोंच से सहलाने लगे घाव

अनवरत उनका सिलसिला

खुद इतने नन्हे/टहनियाँ, डाली कुछ नहीं

ये मंज़र और बदली उजाड़ बस्तियाँ।'

इतना होने के बाद भी कवयित्री की जीवटता देखिए–तमाम नाउम्मीदियों, तबाहियों के बाद भी पुनर्नवा की भाँति जीवन के पुनः उठ खड़े होने की उम्मीद पालती हैं-

'सुबह होगी ही, रात ने कहीं से आवाज़ दी'।

जीवन के प्रति इसी रागमय दृष्टि का फल है कि बुद्ध उन्हें सांसारिक कर्त्तव्यों से

मुँह मोड़ने वाले, पलायन के प्रतीक लगते हैं। वह बुद्ध से लाख गुना कठिन त्याग स्त्रियों का मानती हैं जो मायका त्यागती हैं तो कहीं और (ससुराल) जीवन-वृक्ष रोपती हैं, संस्कार और शिक्षा के जल से सींचती हैं। इस क्रम में घोर शारीरिक, मानसिक आघात सहती हैं, ताने, उपहास सहती हैं। ये सारे कष्ट हँसकर उड़ा देती हैं-निर्लिप्त सर पर बुद्ध बनना उन्हें पसन्द नहीं है।

'और फिर भी त्याग करने/परिवार को समाज को/ साँस लेने लायक रखने के लिए ... इन गुणों से उस छोर तक पहुँच जाती हैं'/ अर्थात् पारमिता को समझती हैं/हम फिर भी बुद्ध नहीं बनना चाहतीं।"

आज का यह सच है कि कवि अपने परिवेश, देश, समाज से अलग नहीं रह सकता। इसलिए वह राजनीति से प्रभावित हुए बिना भी नहीं रह सकता। कविता की समकालीनता अपने सामाजिक, राजनैतिक व सांस्कृतिक परिवेश की पर्याय होती है।

पर कवयित्री तो मानवतावाद की पक्षधर हैं। वह वर्ग-विभेद, अपना-पराया से हटकर मानव-मानव में समानता की वकालत करती हैं-'अस मानुष की जात'।

'मैं अपने शरीर में लाल खून बहने देना चाहती हूँ

सरयू के साथ नर्मदा और कृष्णा बहे

मैं भूखे देश को रोटी देना चाहती हूँ।'

इस संग्रह में कवयित्री ने कई विषयों को अपनी कविताओं के कथ्य में शामिल किया है। उन्होंने कई संवेदनशील मुद्दों को छुआ है जैसे समाज के दबे-कुचले, किसान-मज़दूर, किन्नर, माँ, पिता आदि। किन्नरों की सामाजिक स्थिति उन्हें उद्वेलित करती है। उनका अकारण जीवन-पर्यंत समाज-बहिष्कृत जीवन, अन्य सभी मानवीय क्षमताओं के बावजूद नाटकीय जीवन जीना कवयित्री को बेचैन करता है-

'जब अनसुने कर जाते हैं अपने/ बजानी पड़ती हैं तालियाँ

दुनिया जो चलती रहती है बेफ़िक्री से/ उसे भला मालूम कैसे हो उनकी व्यथा।' ('किन्नर')

निवेदिता को बनारस और राँची बहुत प्रिय शहर लगते हैं। उन्होंने बनारस पर तीन और बनारस स्थित महाश्मशान मणिकर्णिका घाट पर चार कविताएँ लिखी हैं। मणिकर्णिका पर तो उन्होंने मैथिली में स्वतन्त्र काव्य-संग्रह ही लिखा है। दरअसल कोई भी शहर केवल एक भूगोल ही नहीं होता, नदी, घाट, मकान, गलियों आदि का बना शहर नहीं होता बल्कि उसकी अपनी सामाजिक, सांस्कृतिक विशिष्टता होती है, इतिहास होता है। तमाम यादें जुड़ी होती हैं। बनारस के बारे में वह लिखती हैं-

'शहर ये अजीब है/कब जागता है कब सोता है

मन्दिर ही मन्दिर/पीछे-आगे जड़ जमाए श्मशान,

कहीं ज़िन्दगी तो कहीं मौत.... बेफ़िक्र शहर है ये।'

'मणिकर्णिका' के प्रसंग में निवेदता बेहद दार्शनिक हो उठती हैं। उन्हें यह एक 'चेंज-ओवर' स्टेशन लगता है। वह कहती हैं-

'जीवन और मृत्यु के बीच की कड़ी है 'मणिकर्णिका'। ❑

(कृति : 'तुम मुझसे फिर मिलना' (कविता-संग्रह) ; कवयित्री : निवेदिता; प्रकाशक : भारतीय ज्ञानपीठ, 18-इं स्टिट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नई दिल्ली-110003; मूल्य : 210 रुपये)



संगीता

व्यंग्य : जीवन के गुण-दोष का दर्पण

हरिशंकर परसाई ने व्यंग्य को जीवन के गुण-दोष का दर्पण कहा है। उनके अनुसार, "व्यंग्य जीवन से साक्षात्कार करता है, जीवन की आलोचना करता है, विसंगतियों, मिथ्याचारों और पाखंडों का पर्दा काटा करता है। अच्छा व्यंग्य सहानुभूति का सबसे उत्कृष्ट रूप होता है।"

आज़ादी के बाद देश की सामाजिक, आर्थिक व्यवस्था को प्रस्तुत करते हुए हरिशंकर परसाई ने व्यंग्य विधा को सबसे अधिक महत्ता दी। इनके अलावा शंकर पुणताम्बेकर, नरेन्द्र कोहली, गोपाल चतुर्वेदी, विष्णु नागर, ज्ञान चतुर्वेदी, सूर्यकान्त व्यास, आलोक पुराणिक आदि प्रमुख व्यंग्यकार रहे हैं जिन्होंने साहित्य में व्यंग्य को एक नया स्वरूप दिया।



आधुनिक युग में व्यंग्य कविता का भी बहुत महत्वपूर्ण स्थान रहा है, जो निराला से शुरू होकर केदारनाथ सिंह, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, रघुवीर सहाय, धूमिल आदि से होती हुई आज तक पहुँची है।

कुछ समय पहले हाल ही में 'ज़ीरो बटा सन्नाटा' पुस्तक प्रकाशित हुई है जिसके लेखक तेज प्रताप नारायण हैं। समकालीन लेखकों में तेज प्रताप नारायण का महत्वपूर्ण स्थान है। इन्होंने अपने लेखन में ज्वलंत विषयों को प्रमुख स्थान दिया है, जिनका केन्द्रबिन्दु राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक एवं व्यावहारिक रहा है। इनके लेखन में साहित्य की विभिन्न विधाओं का समावेश है। ये कवि के साथ-साथ कहानीकार, उपन्यासकार, व्यंग्यकार एवं संस्मरण लेखक भी हैं। 'सूरज की नई किरण', 'अपने-अपने एवरेस्ट', 'सीमाओं के पार', 'किन्तु-परन्तु' इनके कविता-संग्रह हैं। 'कितने रंग ज़िन्दगी के', 'एयरपोर्ट पर एक रात' इनके कहानी-संग्रह हैं। इन्होंने 'टेक्निकल लव' जैसे उपन्यास की भी रचना की, जो काफ़ी चर्चा में रहा। इसके अलावा साझा उपन्यास लेखन भी इनका बेहद सराहनीय रहा है।

सम्पर्क : *ई-मेल : sangeetajha052@gmail.com*

सामाजिक, वैज्ञानिक, राजनैतिक, आर्थिक, धार्मिक, प्रेम-परिहास आदि विषयों पर किताबें लिखी जाती रही हैं परन्तु इन सभी विषयों को एक साथ पाठकों के सामने बहुत ही रोचक ढंग से प्रस्तुत किया है तेज प्रताप नारायण ने।

तेज प्रताप नारायण द्वारा लिखित पुस्तक 'ज़ीरो बटा सन्नाटा' एक व्यंग्य-संग्रह है। इसका मुख्य विषय आम जन-जीवन से सम्बन्धित है। यह व्यक्ति के रोज़मर्रा के जीवन की स्थितियों को उजागर करता है। इस पुस्तक में सामान्य व्यक्ति के जीवन को प्रभावित करने वाले कारकों को प्रस्तुत किया गया है, जिसमें राजनीति, प्रेम, पैसा आदि के प्रभाव को दिखाया गया है।

संग्रह में बहुभाषिक शब्दों का प्रयोग किया गया है जिनमें हिन्दी, अंग्रेज़ी, भोजपुरी आदि के शब्द प्रमुख हैं। संग्रह की भाषा आम बोलचाल की होने के कारण पाठकों को आकर्षित करती है। इसमें प्रस्तुतिकरण की शैली इतनी रोचक एवं प्रभावशाली है कि पाठक पुस्तक के साथ बहता चला जाता है।

विषय के विवरण के लिए उप-शीर्षकों का प्रयोग किया गया है जो किसी फ़िल्म के गाने, आम भाषा, मुहावरा, लोकोक्ति आदि से सम्बद्ध होने के कारण पाठकों को जोड़े रखता है!

पुस्तक का शीर्षक '0/सन्नाथ' विकास एवं योजनाओं की प्रगति आदि के परिणाम को दिखाता है, जो आमजन के लिए 'ज़ीरो बटा सन्नाटा' है।

पुस्तक में राजनीति से सम्बन्धित अनेक प्रसंगों को प्रस्तुत किया गया है, जिनमें समाज पर राजनैतिक व्यवस्था के प्रभाव को अंकित किया गया है। समाज में आम लोगों के मौलिक अधिकार और मौलिक कर्त्तव्यों का प्रश्न सामने है और जिसमें हर व्यक्ति अपने मौलिक अधिकारों के प्रति तो जागरूक होता है परन्तु मौलिक कर्त्तव्यों को अनदेखा करता हुआ आगे बढ़ जाता है जो व्यक्ति व समाज दोनों के विकास में बाधक सिद्ध होगा है।

किसी व्यक्ति के लिए रोज़गार का होना अत्यंत महत्वपूर्ण है। बेरोज़गारी की स्थिति अवसाद उत्पन्न करती है। रोज़गार के अवसर एवं ज्ञान-विज्ञान के प्रचार-प्रसार का प्रभाव सीधा भाषा से सम्बन्धित होता है। इसी तरह के विषयों को रेखांकित करते हुए भारत में हिन्दी की दोयम स्थिति को प्रस्तुत किया गया है। जहाँ लोग हिन्दी भाषी होते हुए भी हिन्दी को उतना महत्व नहीं देते जितना अंग्रेज़ी को दिया जाता है। अधिकांश कार्यालयों में हिन्दी पखवाड़ा तो मनाया जाता है, परन्तु इसके अलावा हिन्दी के प्रचार-प्रसार से सम्बन्धित कोई ख़ास गतिविधि देखने को नहीं मिलती। हिन्दी, अंग्रेज़ी आदि विषयों के मार्मिक पक्ष को पात्रों के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है।

प्रेम के बदलते स्वरूप को भी पुस्तक में प्रस्तुत किया गया है। पहले का प्रेम जहाँ 'जब नयन मिले तो प्यार हुआ, तीर जिगर से प्यार हुआ' वाली स्थिति आधुनिक समाज में 'नज़र के सामने जिगर से दूर' में बदलने वाली मानसिकता में बदलने लगी है, जहाँ मनुष्य क्षणवादी होता जा रहा है। वह प्रेम के आत्मिक स्वरूप से अधिक लौकिक स्वरूप को महत्व देने लगा है।

आधुनिक समाज में सभ्य दिखने के लिए माता-पिता बच्चों को संस्कारित करना चाहते हैं परन्तु बच्चे को सभ्य बनाते हुए वे यह भूल जाते हैं कि उनका बच्चा उनका मोहरा नहीं है। वे अपने अनुसार उनकी दिनचर्या को निर्धारित करने लगते हैं जिसका

सीधा प्रभाव उनके बचपने पर पड़ने लगता है। यह असमान्य स्थिति 'मोहरा' फ़िल्म के गीत 'सुबह से लेकर शाम तक, शाम से लेकर रात तक, मुझे प्यार करो' को चरितार्थ करने लगती है जिसमें माता-पिता अपने छोटे बच्चों पर अपनी महत्वाकांक्षाओं का बोझ डालने लगते हैं। वे अपने जीवन की असफलताओं को अपने बच्चे के माध्यम से पूरा करने के प्रयास में लगे रहते हैं।

वैज्ञानिक दुनिया में यन्त्रों का प्रभाव अधिक देखने को मिलता है लेकिन यन्त्रों को संचालित करते-करते व्यक्ति स्वयं ही यान्त्रिक होने लगता है। सोशल मीडिया व्यक्ति को समाज से बिलकुल काटने लगती है। जिसका प्रभाव न केवल मनुष्य के सामाजिक जीवन पर पड़ता है, बल्कि उसका पारिवारिक जीवन भी सामान्य नहीं हो पाता। पुस्तक में 'मोबाइलमुखी' शीर्षक के माध्यम से आमजन की इसी स्थिति को दिखाया गया है जिसमें मोबाइलमुखी होने के कारण पारिवारिक विघटन की मनःस्थिति उत्पन्न होती है परन्तु लोग तब भी अपने मोबाइल की फ़ेक आईडी वाले व्यक्ति को ही महत्व देने लगते हैं जिसका परिणाम सदैव नकारात्मकता की ओर जाता है।

अतः कहा जा सकता है कि व्यंग्य-संग्रह 'ज़ीरो बटा सन्नाटा' प्रेम-सौहार्द्र, समानता, स्वतन्त्रता एवं भाईचारे का संदेश देता है जो व्यक्ति, समाज, देश के विकास हेतु अत्यंत आवश्यक तत्त्व है। ❑

(कृति : 'ज़ीरो बटा सन्नाटा' (व्यंग्य-संग्रह) ; लेखक : तेज प्रताप नारायण ; प्रकाशक : साहित्य संचय प्रकाशन, दिल्ली ; पृष्ठ : 152 ; मूल्य : 200 रुपये)

पुस्तकें मिलीं

- 'मील का पत्थर' (निबन्ध संग्रह) ; लेखिका : अहिल्या मिश्र ; प्रकाशक : गीता पुस्तक केन्द्र 4-2-771, रामकोट चौरस्ता, हैदराबाद-500001, पृष्ठ : 228 ; मूल्य : 295 रुपये
- 'भारतीय राष्ट्रवाद का क ख ग' ; कृतिकार : विजय रंजन ; प्रकाशक : विकल्प प्रकाशन, 2226/बी, गली नं. 33, पहला पुस्ता, सोनिया विहार, दिल्ली-110090 ; पृष्ठ : 368 ; मूल्य : 800 रुपये (सजिल्द)
- 'फ़ोटोफ्रेम में क़ैद हँसी' (स्त्री-विमर्श कहानी-संग्रह), लेखिका : सुमन बाजपेयी ; प्रकाशक : फ़्ला ईड्रीम्स पब्लिकेशंस, जैसलमेर, राजस्थान ; पृष्ठ : 164, मूल्य : 160 रुपये
- 'समय सापेक्ष' (कविता-संग्रह) ; कवि : अवधेश अमन ; प्रकाशक : रेड टॉरट्वायज़ आइज़ प्रकाशन, बिरला कॉलोनी, फुलवारी शरीफ़, पटना-801505 ; पृष्ठ : 120 ; मूल्य : 200 रुपये
- 'महज़ ये वायरस नहीं' (काव्य-संग्रह) ; कवि : गोविन्द पाल ; प्रकाशक : न्यू वर्ल्ड पब्लिकेशन, सी-515, बुद्ध नगर, इन्द्रपुरी, नई दिल्ली-110012 ; पृष्ठ : 110 ; मूल्य : 350 रुपये
- 'दो नाटक : आधा आकाश और तमाशा' ; लेखक : महावीर अग्रवाल ; प्रकाशक : श्री प्रकाशन, ए-14, आदर्श नगर, दुर्ग, छत्तीसगढ़ ; पृष्ठ : 192 ; मूल्य ; 460 रुपये
- 'गुड़ का ढेला' (कहानी-संग्रह) ; लेखक : चितरंजन भारती ; प्रकाशक : सत्राची फ़ाउंडेशन, राजीव नगर, रोड नं.15 ई, पटना-800024 ; पृष्ठ : 158; मूल्य : 350 रुपये ❑

● पुस्तक परिचय

भारतीय स्वाधीनता संग्राम और अण्डमान



प्रकाशन विभाग, सूचना भवन,
सीजीओ कॉम्प्लेक्स, लोदी रोड,
नई दिल्ली-110003
लेखक : व्यास मणि त्रिपाठी
पृष्ठ : 92
मूल्य : 410 रुपये (पेपरबैक)
585 रुपये (हार्डबाउंड)

आज़ादी की लड़ाई में अण्डमान तथा निकोबार द्वीपसमूह की बड़ी भूमिका है। क्रान्ति की ज्वाला पूरे भारतवर्ष में भड़की थी लेकिन उसका सर्वाधिक ताप सहा वहाँ से सैकड़ों मील दूर सागर की गोद में अवस्थित शान्त, निर्द्वन्द्व और नैसर्गिक सुषमा सम्पन्न अण्डमान तथा निकोबार द्वीपसमूह ने- वह भी माथे पर 'कालापानी' के टीके के साथ। यातना, भय, पीड़ा, अमानवीयता, क्रूरता, नृशंसता और प्राणान्तक दण्ड का नाम था- कालापानी।

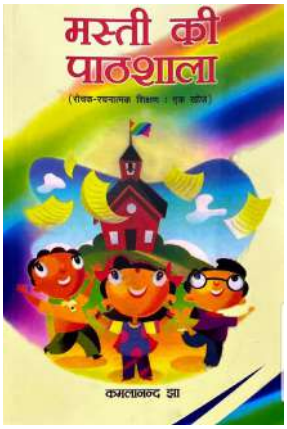
इसी कालापानी की यात्रा को लेखक व्यास मणि त्रिपाठी ने इस पुस्तक के ज़रिए प्रस्तुत किया है जहाँ पहुँचकर वतन वापसी की सम्भावनाएँ क्षीण हो जाती थीं। यह पुस्तक प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम से स्वतन्त्रता के पश्चात सेल्यूलर जेल के राष्ट्रीय स्मारक बनने का विवरण मात्र नहीं है बल्कि विभिन्न क्रान्तिकारी आंदोलनों के नायकों के साहस और शौर्य की गाथा भी है। आज देश आज़ादी का अमृत महोत्सव मना रहा है। इस महोत्सव के माध्यम से आज़ादी के महानायकों के त्याग और बलिदान को नई पीढ़ी तक पहुँचाने की कोशिश हो रही है। इसी क्रम में एक सार्थक प्रयास करते हुए लेखक ने यह पुस्तक लिखी है।

दस अध्यायों में बँटी यह पुस्तक औपनिवेशिकता से पहले के अण्डमान से परिचय कराती है। यह अध्याय अण्डमान तथा निकोबार द्वीपसमूहों के नाम की उत्पत्ति के साथ-साथ वहाँ के आदिवासी समुदाय की जानकारी भी देता है। दूसरे अध्याय में इन द्वीपों में अंग्रेज़ों के उपनिवेश-स्थापना के पहले प्रयास की बानगी के साथ-साथ उसकी असफलता की कहानी भी है। तीसरे अध्याय में प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम में अण्डमान के बन्दी उपनिवेश की भूमिका का वर्णन है तो चौथा अध्याय आदिवासी स्वातन्त्र्य संघर्ष को प्रस्तुत करता है। पाँचवें और छठे अध्याय में सेल्यूलर जेल बनने से पहले स्वतन्त्रता सेनानियों की स्थिति एवं यातना गृह सेल्यूलर जेल की दास्ताँ है। साथ ही यह भी बताता है कि कैसे प्राकृतिक सुषमा सम्पन्न अण्डमान को न केवल बन्दी उपनिवेश बनाया गया बल्कि दैत्याकार सेल्यूलर जेल खड़ी कर उसके परकोटे में क्रान्तिकारियों की आवाज़ों को दबाने की कोशिशें भी की गईं। सातवें अध्याय में स्वाधीनता-संघर्ष के नायकों की सेल्यूलर जेलयात्रा का वर्णन है। आठवें अध्याय में जापानी आधिपत्य की चर्चा की गई है। नवें अध्याय में नेताजी सुभाषचन्द्र बोस के अण्डमान आगमन पर प्रकाश डाला गया है तथा दसवाँ अध्याय राष्ट्रीय स्मारक सेल्यूलर जेल की कहानी पाठकों को बताता है। ❑

(प्रस्तुति : **प्रियंका सिंह**)

● पुस्तक परिचय

मस्ती की पाठशाला



प्रकाशन विभाग, सूचना भवन,
सीजीओ कॉम्प्लेक्स, लोदी रोड,
नई दिल्ली-110003
लेखक : कमलानन्द झा
पृष्ठ : 127
मूल्य : 215 रुपये

व्यक्ति को समाज की इकाई और सामाजिक व्यवस्था का आधार माना जाता है। समाज की प्रगति में वह सहजता से भागीदार बन सके, इसलिए उसे एक व्यवस्थित शिक्षण-प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है। यह कार्य प्राथमिक स्तर पर स्कूल करते हैं, जिन्हें विद्यालय या पाठशाला भी कहा जाता है। शिक्षण-प्रशिक्षण की यह यात्रा सरल, सुखद, मनोरंजक और ज्ञानवर्धक हो, इसमें शिक्षक की एक बड़ी भूमिका होती है। किसी व्यक्ति के जीवन की प्रारम्भिक अवस्था में उसके भीतर जानने-सीखने की चाह जगाने वाला व्यक्ति शिक्षक ही होता है। शिक्षक यदि नवोन्मेषी, परिश्रमी, उत्साही और अपने शिक्षण-कौशल को निरन्तर माँजने वाला हो, तो उसकी पाठशाला 'मस्ती की पाठशाला' बन सकती है।

प्रकाशन विभाग ने हाल ही में 'मस्ती की पाठशाला' शीर्षक से एक पुस्तक प्रकाशित की है। यह पुस्तक हमारे समय के स्कूलों में शिक्षण के मौजूदा तौर-तरीक़ों की ख़ामियों को सामने लाती है और शिक्षण के आदर्श व रोचक तरीकों को उदाहरण के साथ प्रस्तुत करती है। यह पुस्तक न सिर्फ़ शिक्षकों और अभिभावकों को बाल मनोविज्ञान समझने की सीख देती है, बल्कि कक्षाओं में सिखाने-पढ़ाने के तौर-तरीक़ों को मनोरंजक और रोचक बनाने की अपील भी करती है। पुस्तक की विषय-वस्तु दो खण्डों में विभक्त है। पहला खण्ड 'शिक्षा के सरोकार' नाम से है। इसमें पाठ्यपुस्तकों की सामाजिक भूमिका की पड़ताल करते हुए, कक्षा में शिक्षक व छात्रों की भूमिका में बदलाव, बच्चों में प्रश्न पूछने की प्रवृत्ति को प्रोत्साहन देने की आवश्यकता पर चर्चा की गई है। विषय-वस्तु का दूसरा खण्ड 'अध्यापन के पक्ष' नाम से है। इसमें मुख्य रूप से कक्षा में व्याकरण, समाज विज्ञान, नाटक, कविता और कहानी आदि के अध्यापन की प्रचलित विधियों पर प्रश्न उठाते हुए, अध्यापन की नई विधियों को अपनाने पर बल दिया गया है। स्कूली शिक्षकों और अभिभावकों के लिए यह पुस्तक विशेष रूप से उपयोगी है, क्योंकि यह बच्चों को पढ़ाने के दौरान आने वाली अधिकांश चुनौतियों का व्यावहारिक समाधान देने का प्रयास करती है। ❑

(प्रस्तुति : **अभिषेक चतुर्वेदी**)

G20
भारत 2023 INDIA
वसुधैव कुटुंबकम
ONE EARTH · ONE FAMILY · ONE FUTURE

आज़ादी का अमृत महोत्सव



अब उपलब्ध

संकलन 2022

कुरुक्षेत्र (अंग्रेजी)



*कुरुक्षेत्र (अंग्रेजी) का छमाही संकलन (जुलाई से दिसंबर 2022) भी उपलब्ध है।
प्रत्येक छमाही संकलन का मूल्य 150 रुपये है।

जनवरी से दिसंबर 2022
मूल्य : ₹300/-*

प्रकाशन विभाग
सूचना और प्रसारण मंत्रालय
भारत सरकार

संकलन ऑनलाइन खरीदने के लिए कृपया www.bharatkosh.gov.in पर जाएं।
ऑर्डर के लिए कृपया संपर्क करें : फोन : 011-24365609, ईमेल : businesswng@gmail.com
वेबसाइट : www.publicationsdivision.nic.in

/dpd_india @DPD_India /publicationsdivision

डाक तार पंजीयन सं. डी एल (एस) – 42/ पी एम 2022/23-24 बिना पूर्व भुगतान के साथ आर.एम.एस. दिल्ली से पोस्ट करने के लिए लाइसेंस यू (डी एन)-49/2021-23

Postal Regn. No. DL (S) - 42/ पी एम 2022/23-24 दिल्ली डाक आर एन आई 701/57

Licenced U (DN) - 49/2021-23 to post without pre-payment at RMS Delhi Delhi Postal RNI 701/57

● 10 मार्च 2023 को प्रकाशित ● 21-22 मार्च 2023 को डाक द्वारा जारी ● वार्षिक मूल्य : ₹ 230

प्रकाशक व मुद्रक : अनुपमा भटनागर, महानिदेशक द्वारा प्रकाशन विभाग के लिए एजुकेशनल स्टोर्स, ग़ाज़ियाबाद (उ.प्र.) से मुद्रित एवं प्रकाशन विभाग, सूचना भवन, सीजीओ कॉम्प्लेक्स, लोदी रोड, नई दिल्ली-110003 से प्रकाशित। सम्पादक : फरहत परवीन